अणुव्रत-विचार

दो शब्द

विगत पांच वर्षों से मुनि श्री नगराज जी देहली, जयपुर व बम्बई आदि केन्द्रों में अणुव्रत कार्यक्रम चलाते रहे हैं। विभिन्न वर्गों में व विभिन्न प्रसंगों पर होने वाले आपके प्रवचनों को देश के दैनिक-पत्रों ने प्रमुख स्थान दिया है। आपके प्रत्येक भाषण में चिन्तन और स्थाई प्रेरणा तत्त्व का सद्भाव है। उन बिखरे भाषणों का व्यवस्थित रूप ही यह 'अणुव्रत–विचार' है।

मुनि श्री नगराज जी के भाषणों का एक संकलन 'अणु से पूर्ण की ओर' नाम से मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी कर चुके हैं। 'अणु से पूर्ण की ओर' पुस्तक में २५ भाषणों का समग्र संकलन है और प्रस्तुत पुस्तक में ११२ भाषणों का समाचार पत्रों से समुद्धृत संकलन। उपलब्ध भाषणों की संख्या तो बहुत अधिक थी पर इस पुस्तक में कुछ ही भाषण लिए गए। संकलन में विचारों की पुनरावृत्ति न हो यह ध्यान बरता गया है, तथापि एक ही वक्ता के बहुत सारे भाषणों में कुछ भावों का मिल जाना अस्वाभाविक नहीं होता। भाव खण्डित न हो इसलिए उन समान अंशों ज्यों का त्यों रखना ही आवश्यक समझा गया है।

१६ जून, १९५८

कानपुर

मोतीलाल जै

दो शब्द

विगत पांच वर्षों से मुनि श्री नगराज जी देहली, जयपुर व बम्बः आदि केन्द्रों में अणुव्रत कार्यक्रम चलाते रहे हैं। विभिन्न वर्गों में व विभिन्न प्रसंगों पर होने वाले आपके प्रवचनों को देश के दैनिक-पत्रं ने प्रमुख स्थान दिया है। आपके प्रत्येक भाषण में चिन्तन और स्थाः प्रेरणा तत्व का सद्भाव है। उन बिखरे भाषणों का व्यवस्थित रू ही यह 'अणुव्रत–विचार' है।

मुनि श्री नगराज जी के भाषणों का एक संकलन 'अणु से पूर्ण क ओर' नाम से मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी कर चुके हैं। 'अणु से पूण की ओर' पुस्तक में २५ भाषणों का समग्र संकलन है और प्रस्तुत पुस्तक म ११२ भाषणों का समाचार पत्रों से समुद्धृत संकलन। उपलब्ध भाषणं की संख्या तो बहुत अधिक थी पर इस पुस्तक में कुछ ही भाषण लिए गए संकलन में विचारों की पुनरावृत्ति न हो यह ध्यान बरता गया है, तथापि एक ही वक्ता के बहुत सारे भाषणों में कुछ भावों का मिल जाना अस्वा भाविक नहीं होता। भाव खण्डित न हो इसलिए उन समान अंशों क ज्यों का त्यों रखना ही आवश्यक समझा गया है।

१६ जून, १९५८ मोतीलाल जैन

कानपुर

अनुक्रम

अणुव्रत-विचार

अनुक्रम

अणुव्रत-विचार

धर्म

धर्म का सन्देश-प्राणी मात्र को अभयदान

भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुंच कर आज मानव-जाति असन्तुलित हो चुकी है। निर्माण के नाम पर अस्त्रों का निर्माण आज मनुष्य पर हावी हो चला है। विनाश के कगारों पर पहुंची मानव-जाति में सन्तुलन लाने के लिए धर्म का पुनरुज्जीवन अत्यन्त अपेक्षित है।

भौतिक विज्ञान ने जहां प्रलयंकारी अणु-अस्त्र मनुष्य को दिए वहां धर्म के उदय से विश्व शान्ति व विश्व मैत्री का सर्जक अभयदान का अमोघ मंत्र मनुष्य को मिलेगा। व्यक्ति व्यक्ति को, समाज समाज को, एक देश दूसरे देश को अभय प्रदान करेगा। जब एक इकाई दूसरी इकाई को यह भरोसा करा देगी मेरे से तुम्हें भय नहीं है तब मानव मानव के बीच संघर्ष रह सकेगा यह सोचा ही नहीं जा सकता।

अग्नि अपने तेजो धर्म से, पानी द्रवत्व धर्म से, पवन गति धर्म से अस्तित्वशील है। इसी प्रकार मानव-जाति भी अपने अहिंसा-धर्म पर प्रतिष्ठित है। धर्म से च्युत होने का अर्थ मानव-जाति का आधार शून्य होना है। धर्म वृक्ष है, अहिंसा उसकी शाखा है। धर्म का जितना अधिक सिंचन होगा अहिंसा की शाखा उतनी ही अधिक पुष्पित और फलित होगी।

धर्म को वर्चस्वी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि विश्व के सभी धर्मों के लिए चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के पारस्परिक असहिष्णुताएं मिटें और सह-अस्तित्व बढ़े। भारतवर्ष में आचार्य श्री तुलसी अपने ६५० साधु, शिष्यों सहित अणुव्रत आन्दोलन के नाम से एक व्यापक तथा प्रभावशाली कार्यक्रम चला रहे हैं। नैतिक नव जागरण के साथ साथ धार्मिक सह-

धर्म

धर्म का सन्देश-प्राणी मात्र को अभयदान

भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुंच कर आज मानव-जाति असन्तुलित हो चुकी है। निर्माण के नाम पर अस्त्रों का निर्माण आज मनुष्य पर हावी हो चला है। विनाश के कगारों पर पहुंची मानव-जाति में सन्तुलन लाने के लिए धर्म का पुनरुज्जीवन अत्यन्त अपेक्षित है।

भौतिक विज्ञान ने जहां प्रलयंकारी अणु-अस्त्र मनुष्य को दिए वहां धर्म के उदय से विश्व शान्ति व विश्व मैत्री का सर्जक अभयदान का अमोघ मंत्र मनुष्य को मिलेगा। व्यक्ति व्यक्ति को, समाज समाज को, एक देश दूसरे देश को अभय प्रदान करेगा। जब एक इकाई दूसरी इकाई को यह भरोसा करा देगी मेरे से तुम्हें भय नहीं है तब मानव मानव के बीच संघर्ष रह सकेगा यह सोचा ही नहीं जा सकता।

अग्नि अपने तेजो धर्म से, पानी द्रवत्व धर्म से, पवन गति धर्म से अस्तित्वशील है। इसी प्रकार मानव-जाति भी अपने अहिंसा-धर्म पर प्रतिष्ठित है। धर्म से च्युत होने का अर्थ मानव-जाति का आधार शून्य होना है। धर्म वृक्ष है, अहिंसा उसकी शाखा है। धर्म का जितना अधिक सिंचन होगा अहिंसा की शाखा उतनी ही अधिक पुष्पित और फलित होगी।

धर्म को वर्चस्वी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि विश्व के सभी धर्मों के लिए चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के पारस्परिक असहिष्णुताएं मिटें और सह-अस्तित्व बढ़े। भारतवर्ष में आचार्य श्री तुलसी अपने ६५० साधु शिष्यों सहित अणुव्रत आन्दोलन के नाम से एक व्यापक तथा प्रभावशाली कार्यक्रम चला रहे हैं। नैतिक नव जागरण के साथ साथ धार्मिक सह-

अवस्थान भी उसका एक प्रमुख उद्देश्य है। आचार्य श्री तुलसी ने विभिन्न धर्मों में सहचारिता का आधार बनाने के लिये धर्म गुरुओं, धर्माचार्यों तथा धर्म प्रेमी जनता का ध्यान निम्न पांच बातों की ओर खींचा है —

(१) मण्डनात्मक नीति बरती जाए, दूसरे धर्मों के प्रति आक्षेप न किया जाए।

(२) सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए ।

(३) किसी धर्म के व धर्म गुरु के प्रति घृणा के भाव न फैलाए जाएं।

(४) सम्प्रदाय परिवर्तन के लिए किसी पर दबाव न डाला जाए, स्वेच्छा से ऐसा करने वालों का सामाजिक बहिष्कार न किया जाए ।

(५) सर्वमान्य धर्म का संगठित प्रचार किया जाए ।

(दिल्ली में विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर दिए गए भाषण से)

विचारों की असहिष्णुता ही साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध वेश-भूषा से नहीं है, उसका सम्बन्ध विचारों से है। किसी सम्प्रदाय विशेष की वेश-भूषा में आ जाने मात्र से कोई व्यक्ति साम्प्रदायिक नहीं बन जाता और सम्प्रदायों से परे धोती कुर्ता पहने रहने से ही कोई व्यक्ति असाम्प्रदायिक नहीं बन जाता। सही अर्थ में विचारों की असहिष्णुता ही साम्प्रदायिकता है और विचारों का सम्प्रदाय ही संकीर्णता का द्योतक है। आज लोग सम्प्रदायों से मुक्त रहने की बात सोचते हैं, पर दो कदम आगे चल कर ही वे अपने विचारों का एक ऐसा सम्प्रदाय बना लेते हैं कि उससे बाहर रह जाने वाला व्यक्ति व समुदाय उनकी दृष्टि

में असहिष्णुतावादी, संकीर्ण व साम्प्रदायिक हो जाता है। वे उनके विचारों को सहन नहीं कर सकते। उनके सत्य की दुनिया बहुत छोटी हो जाती है उसी में आग्रह पूर्वक चलते हैं—यह है विचारों का सम्प्रदाय।

मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि जीवन में एक बार व्यक्ति उदार होकर आगे बढ़ता है और जीवन के हेय तथा उपादेय तथ्यों का नया मूल्यांकन करता है, किन्तु वहां स्थिर हो जाता है। अपने से पीछे चलने वालों को जैसे साम्प्रदायिक व रूढ़िग्रस्त बताता है उसी प्रकार अपने से अगली पीढ़ी के नये विचारों को भी अपनी असहिष्णुता के कारण भावावेश, बच्चों का खिलवाड़ व अनुभव-शून्य विचार घोषित माना करता है। अतः विरोधी विचारों को सह सकने वाला व्यक्ति ही उदारता एवं विचारकता की कोटि में आ सकता है।

असहिष्णुता एक ऐसी बीमारी है जो जीवन की जमी जमाई सारी कड़ियों को उखाड़ पृथक कर देती है। पारिवारिक जीवन में गृह-कलह व सा- वैज्ञानिक एवं राजनैतिक जीवन में होने वाली स्पर्धायें, मिथ्या-आक्षेप, प्रतिद्वन्द्विता व नाना लड़ाई-झगड़े इसी के परिणाम हैं। धार्मिक जगत में भी सम्प्रदायों या व्यक्तियों के बीच होने वाली असमञ्जसता इसी का परिणाम है। अतः आज के सामाजिक जीवन को स्वस्थ, आदर्श व उन्नत करने के लिए विचार सहिष्णुता व सर्वधर्म सद्भाव की वृत्ति को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

(बम्बई में अणुव्रत विचार-परिषद में दिए गए भाषण से)

नैतिक उत्क्रान्ति में ही धर्म का पुनरुज्जीवन

दीपक से दीपक जलता जाए तो दीपक की कितनी ही लम्बी कतार क्यों न हो, सहज ही जगमगा उठती है। हर एक व्यापारी अपने पास के

अवस्थान भी उसका एक प्रमुख उद्देश्य है। आचार्य श्री तुलसी ने विभिन्न धर्मों में सहचारिता का आधार बनाने के लिये धर्म गुरुओं, धर्माचार्यों तथा धर्म प्रेमी जनता का ध्यान निम्न पांच बातों की ओर खींचा है —

(१) मण्डनात्मक नीति बरती जाए, दूसरे धर्मों के प्रति आक्षेप न किया जाए।

(२) सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए ।

(३) किसी धर्म के व धर्म गुरु के प्रति घृणा के भाव न फैलाए जाएं।

(४) सम्प्रदाय परिवर्तन के लिए किसी पर दवाव न डाला जाए, स्वेच्छा से ऐसा करने वालों का सामाजिक वहिष्कार न किया जाए ।

(५) सर्वमान्य धर्म का संगठित प्रचार किया जाए ।

(दिल्ली में विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर दिए गए भाषण से)

विचारों की असहिष्णुता ही साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध वेश-भूषा से नहीं है, उसका सम्बन्ध विचारों से है। किसी सम्प्रदाय विशेष की वेश-भूषा में आ जाने मात्र से कोई व्यक्ति साम्प्रदायिक नहीं बन जाता और सम्प्रदायों से परे धोती कुर्ता पहने रहने से ही कोई व्यक्ति असाम्प्रदायिक नहीं बन जाता। सही अर्थ में विचारों की असहिष्णुता ही साम्प्रदायिकता है और विचारों का सम्प्रदाय ही संकीर्णता का द्योतक है। आज लोग सम्प्रदायों से मुक्त रहने की बात सोचते हैं, पर दो कदम आगे चल कर ही वे अपने विचारों का एक ऐसा सम्प्रदाय बना लेते हैं कि उससे बाहर रह जाने वाला व्यक्ति व समुदाय उनकी दृष्टि

में प्रतिक्रियावादी, संकीर्ण व साम्प्रदायिक हो जाता है। वे उनके विचारों को सहन नहीं कर सकते। उनके सत्य की दुनिया बहुत छोटी हो जाती है। वे उसी में आग्रह पूर्वक चलते हैं—यह है विचारों का सम्प्रदाय।

मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि जीवन में एक बार व्यक्ति उदार होकर आगे बढ़ता है और जीवन के हेय तथा उपादेय तथ्यों का नया मूल्यांकन करता है, किन्तु वहां स्थिर हो जाता है। अपने से पीछे चलने वालों को जैसे साम्प्रदायिक व रूढ़िग्रस्त बताता है उसी प्रकार अपने से अगली पीढ़ी के नये विचारों को भी अपनी असहिष्णुता के कारण भावावेश, बच्चों का खिलवाड़ व अनुभव-शून्य विचार घोषित माना करता है। अपने-विरोधी विचारों को सह सकने वाला व्यक्ति ही उदारता एवं विचारकता की कोटि में आ सकता है।

असहिष्णुता एक ऐसी बीमारी है जो जीवन की जमी जमाई सारी रूढ़ियों को उथल पुथल कर देती है। पारिवारिक जीवन में गृह-कलह व सार्वजनिक एवं राजनैतिक जीवन में होने वाली स्पर्धायें, मिथ्या-आक्षेप, प्रतिद्वन्द्विता व नाना लड़ाई-झगड़े इसी के परिणाम हैं। धार्मिक जगत में भी सम्प्रदायों या व्यक्तियों के बीच होने वाली असमञ्जसता इसी का परिणाम है। अतः आज के सामाजिक जीवन को स्वस्थ, आदर्श व उन्नत करने के लिए विचार सहिष्णुता व सर्वधर्म सद्भाव की वृत्ति को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

(बम्बई में अणुव्रत विचार-परिषद में दिए गए भाषण से)

नैतिक उत्क्रान्ति में ही धर्म का पुनरुज्जीवन

दीपक से दीपक जलता जाए तो दीपक की कितनी ही लम्बी कतार क्यों न हो, सहज ही जगमगा उठती है। हर एक व्यापारी अपने पास के

हित नहीं करते। व्यावहारिक और सामाजिक स्तरों के लिए धर्म का उप-योग करना और नैतिक का परिचायक है। विभिन्न धर्मों को अपना पृथक् अस्तित्व कायम रखते हुए भी एक दूसरे के निकट आने की आवश्यकता है।

धर्म जीवन का स्वभाव

धर्म जीवन का स्वभाव है, आत्मा का गुण है, कोई तिजोरी में रखने की वस्तु नहीं। अपने विशुद्ध आचरणों के द्वारा व्यक्ति धर्म स्थान की तरह दुकान पर भी धर्म साधना कर सकता है। मनुष्य के व्यवहार में सब जगह धर्म एवं नैतिकता साथ रहनी चाहिए। जीवन व्यवहार में व्यक्ति जब क्रियात्मक रूप से नैतिकता को अपनाएगा तभी व्यक्ति की संस्कृति और नागरिकता ऊंची उठ सकेगी। जीवन व्यवहार में धर्म व नैतिकता आए इसी भावना से अणुव्रत-आन्दोलन अनुप्रेरित है। यह आन्दोलन सभी धर्मों को एक क्रान्तिकारी मोड़ देने वाला व सर्वजनोपयोगी प्रयास है।

अहिंसा

मांसाहार पशुता की ओर एक कदम

आज देश में मांसाहार व अन्य हिंसात्मक प्रवृत्तियां जिस गति से बढ़ रही हैं उससे स्पष्ट हो जाता है कि आज का मानव समाज अहिंसा से हिंसा की दिशा में कदम बढ़ा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह युग का यह प्रवाह उत्कर्ष की ओर न बढ़कर अपकर्ष की ओर बढ़ रहा है। इसे शीघ्र ही न मोड़ा गया तो मानव समाज, पशु-समाज की सीमा में जा लगेगा।

आज के नये समाज का नारा है "समानता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"। आज का मानव निर्धन व धनिक का, गोरे व काले का, स्पृश्य व अस्पृश्य का भेद नहीं सहता। किन्तु आश्चर्य है अपने विषय में समता के नाम पर सब कुछ चाहने वाला मानव पशु-समाज को खा जाने का भी अपना अधिकार मानता है। मांसाहार करने वाले लोग क्या वे पशुओं के प्रति घोर अन्याय नहीं कर रहे हैं? समान अधिकारों की बात तो दूर, क्या वे उनके जीने के सहज अधिकार भी उन्हें प्रदान करते हैं? मनुष्य स्वार्थी है। अपनी सुख सुविधाओं को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। मूक पशुओं को इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार तो होगा यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं है। अपने स्वाद के लिये कितने निरपराध और मूक पशुओं को वह प्रतिदिन मरवा डालता है। सच बात तो यह है आज उसके मस्तिष्क में मार्क्स का साम्यवाद है, जिसकी सीमाएं बहुत छोटी हैं। पशु-पक्षियों की तो बात ही क्या मानव जाति को भी वहां अभय नहीं है। भगवान् श्री महावीर और गौतम

लिए नहीं रहेंगे। धर्माचरण और आध्यात्मिक साधना ही सब धर्मों का मूल प्रयोजन रहना और [illegible] नैतिक का परिपालन है। विभिन्न धर्मों की अपना पृथक् अस्तित्व कायम रखते हुए भी एक दूसरे के निकट आने की आवश्यकता है।

धर्म जीवन का स्वभाव

धर्म जीवन का स्वभाव है, आत्मा का गुण है, कोई तिजोरी में रखने की वस्तु नहीं। अपने विशुद्ध आचरणों के द्वारा व्यक्ति धर्म स्थान की तरह दुकान पर भी धर्म साधना कर सकता है। मनुष्य के व्यवहार में सब जगह धर्म एवं नैतिकता साथ रहनी चाहिए। जीवन व्यवहार में व्यक्ति जब क्रियात्मक रूप से नैतिकता को अपनाएगा तभी व्यक्ति की संस्कृति और नागरिकता ऊंची उठ सकेगी। जीवन व्यवहार में धर्म व नैतिकता आए इसी भावना से अणुव्रत-आन्दोलन अनुप्रेरित है। यह आन्दोलन सभी धर्मों को एक क्रान्तिकारी मोड़ देने वाला व सर्वजनोपयोगी प्रयास है।

अहिंसा

मांसाहार पशुता की ओर एक कदम

आज देश में मांसाहार व अन्य हिंसात्मक प्रवृत्तियां जिस गति से बढ़ रही हैं उससे स्पष्ट हो जाता है कि आज का मानव समाज अहिंसा से हिंसा की दिशा में कदम बढ़ा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज युग का यह प्रवाह, उत्कर्ष की ओर न बढ़कर अपकर्ष की ओर बढ़ रहा है। इसे शीघ्र ही न मोड़ा गया तो मानव समाज, पशु-समाज की सीमा में जा लगेगा।

आज के नये समाज का नारा है "समानता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"। आज का मानव निर्धन व धनिक का, गोरे व काले का, स्पृश्य व अस्पृश्य का भेद नहीं सहता। किन्तु आश्चर्य है अपने विषय में समता के नाम पर सब कुछ चाहने वाला मानव पशु-समाज को खा जाने का भी अपना अधिकार मानता है। मांसाहार करने वाले लोग क्या वे पशुओं के प्रति घोर अन्याय नहीं कर रहे हैं? समान अधिकारों की बात तो दूर, क्या वे उनके जीने के सहज अधिकार भी उन्हें प्रदान करते हैं? मनुष्य स्वार्थी है। अपनी सुख सुविधाओं को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। मूक पशुओं को इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार भी होगा यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं है। अपने स्वाद के लिये कितने निरपराध और मूक पशुओं को वह प्रतिदिन मरवा डालता है। सच बात तो यह है आज उसके मस्तिष्क में मार्क्स का साम्यवाद है, जिसकी सीमाएं बहुत छोटी हैं। पशु-पक्षियों की तो बात ही क्या मानव जाति को भी वहां अभय नहीं है। भगवान् श्री महावीर और गौतम

नहीं हो सकता। यह मनुष्य की एक भयंकर भूल है कि वह सारे जीव-जगत् को अपने लिए मान बैठा है जब कि संसार में प्रत्येक जीव अपने अपने कर्मानुसार विचरण कर रहे हैं।

हिंसा और क्रूरता की भावना दानवी भावना है और मनुष्य की आत्मा का पतन करने वाली दुष्प्रवृत्ति है। इन्हें त्याग कर प्राणीमात्र के प्रति समता की भावना ग्रहण करके ही मनुष्य अपनी ओर से सारे संसार को अभय-दान कर सकता है, जो दानों में सबसे बड़ा दान है।

अहिंसा एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग

परिवार से व्यक्ति का समष्टि जीवन आरम्भ होता है। वहां उसे माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पुत्र-वधू आदि के बीच अनुशासन मानते हुए और मनवाते हुए चलना पड़ता है। वहां यदि वह धैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य व आर्जव गुणों को लेकर चलता है तो उसे आत्मिक-शान्ति, पारिवारिक जनों का प्रेम, विश्वास और प्रोत्साहन मिलता है और जीवन की गाड़ी सुगमता से चलती रहती है। इसके साथ साथ क्रोध, मान आदि की अल्पता में निःश्रेयस् का मार्ग भी सधता जाता है। इसके बदले व्यक्ति यदि आवेश, अहंकार, स्वार्थ, अनीति व अन्याय का आचरण करता है तो वहां उसे नित नये कलह, आक्रोश, अपमान आदि भोगने पड़ते हैं। दूसरा पहलू अहिंसा का है जिसके प्रयोग की बात मनुष्य एकाएक सोचता ही नहीं। पर जीवन-व्यवहार के प्रसंगों में हिंसा की अपेक्षा अहिंसा अधिक सफल है। मान लीजिए कमरे के बीच में स्याही से भरी दावात पड़ी है। कोई व्यक्ति उधर से आया और दावात पर ठोकर लगने से स्याही इधर उधर बिखर कर पुस्तकों और कपड़ों पर लग गई। उस समय कोई व्यक्ति गुस्से में आकर कहता है—"अन्धा होकर चलता है? इतनी बड़ी स्याही की दावात भी नहीं दीखती? कैसा मूर्ख है।" तो अवश्य उत्तर मिलेगा—

"मैं क्या मूर्ख हूं, मूर्ख है दावात को बीच में रखने वाला। क्या यह भी कोई दावात रखने का स्थान है ?' यदि उस परिस्थिति में स्याही के बिखरते ही मधुरता से यह कहा जाता है-'अहा ! किसने भूलकर दावात रख दी ?' तो सामने वाला व्यक्ति यह कहता है—'दावात रखने वाले की क्या गलती है, देख कर मुझे भी तो चलना चाहिए था।' अस्तु-अहिंसा एक सधा हुआ मनोवैज्ञानिक प्रयोग होना है जिसे काम में लाकर सास बहू को, पिता पुत्र को तथा भाई अपने भाई को बिना किसी कटुता के ही आत्म-निरीक्षण की भूमि पर ला सकता।

(बंबई में 'बाप नुं घर' संस्था के कार्यकर्ताओं के बीच दिए गए भाषण से)

क्या हिंसा और असत्य से काम चल सकता है ?

जीवन व्यवहार में जहां अहिंसा सत्य आदि का प्रश्न आता है साधारणतया हर एक व्यक्ति यही कहता है सब जगह अहिंसा से काम नहीं चलता, सब जगह सत्य से काम नहीं चलता। लेकिन क्या सब जगह हिंसा व असत्य से काम चल सकता है ? यदि नहीं तो फिर अहिंसा और सत्य पर ही निष्ठा क्यों न रखी जाए।

नहीं हो सकता। यह मनुष्य की एक भयंकर भूल है कि वह सारे जीव-जगत् को अपने लिए मान बैठा है जब कि संसार में प्रत्येक जीव अपने अपने कर्मानुसार विचरण कर रहे हैं।

हिंसा और क्रूरता की भावना दानवी भावना है और मनुष्य की आत्मा का पतन करने वाली दुष्प्रवृत्ति है। इन्हें त्याग कर प्राणीमात्र के प्रति समता की भावना ग्रहण करके ही मनुष्य अपनी ओर से सारे संसार को अभय-दान कर सकता है, जो दानों में सबसे बड़ा दान है।

अहिंसा एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग

परिवार से व्यक्ति का समष्टि जीवन आरम्भ होता है। वहां उसे माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पुत्र-वधू आदि के बीच अनुशासन मानते हुए और मनवाते हुए चलना पड़ता है। वहां यदि वह धैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य व आर्जव गुणों को लेकर चलता है तो उसे आत्मिक-शान्ति, पारिवारिक जनों का प्रेम, विश्वास और प्रोत्साहन मिलता है और जीवन की गाड़ी सुगमता से चलती रहती है। इसके साथ साथ क्रोध, मान आदि की अल्पता में निःश्रेयस् का मार्ग भी सधता जाता है। इसके बदले व्यक्ति यदि आवेश, अहंकार, स्वार्थ, अनीति व अन्याय का आचरण करता है तो वहां उसे नित नये कलह, आक्रोश, अपमान आदि भोगने पड़ते हैं। दूसरा पहलू अहिंसा का है जिसके प्रयोग की बात मनुष्य एकाएक सोचता ही नहीं। पर जीवन-व्यवहार के प्रसंगों में हिंसा की अपेक्षा अहिंसा अधिक सफल है। मान लीजिए, कमरे के बीच में स्याही से भरी दावात पड़ी है। कोई व्यक्ति उधर से आया और दावात पर ठोकर लगने से स्याही इधर उधर बिखर कर पुस्तकों और कपड़ों पर लग गई। उस समय कोई व्यक्ति गुस्से में आकर कहता है—"अन्धा होकर चलता है? इतनी बड़ी स्याही की दावात भी नहीं दीखती? कैसा मूर्ख है।" तो अवश्य उत्तर मिलेगा—

"मैं क्या मूर्ख हूं, मूर्ख है दावात को बीच में रखने वाला। क्या यह भी कोई दावात रखने का स्थान है?' यदि उस परिस्थिति में स्याही के बिखरते ही मधुरता से यह कहा जाता है-'अहा! किसने भूलकर दावात रख दी?' तो सामने वाला व्यक्ति यह कहता है—'दावात रखने वाले की क्या गलती है, देख कर मुझे भी तो चलना चाहिए था।' अस्तु-अहिंसा एक सधा हुआ मनोवैज्ञानिक प्रयोग होता है जिसे काम में लाकर सास बहू को, पिता पुत्र को तथा भाई अपने भाई को बिना किसी कटुता के ही आत्म-निरीक्षण की भूमि पर ला सकता।

(बंबई में 'बाप नु घर' संस्था के कार्यकर्ताओं के बीच दिए गए भाषण से)

क्या हिंसा और असत्य से काम चल सकता है?

जीवन व्यवहार में जहां अहिंसा सत्य आदि का प्रश्न आता है साधारणतया हर एक व्यक्ति यही कहता है सब जगह अहिंसा से काम नहीं चलता, सब जगह सत्य से काम नहीं चलता। लेकिन क्या सब जगह हिंसा व असत्य से काम चल सकता है? यदि नहीं तो फिर अहिंसा और सत्य पर ही निष्ठा क्यों न रखी जाए।

शिक्षा के द्वारा आध्यात्मिक पक्ष ऊंचा उठे

जीवन के अन्य पहलुओं की अपेक्षा शिक्षा का पहलू विशेष चिन्तनीय है। आज की शिक्षा पद्धति से लोगों का विश्वास उठता सा जा रहा है, किन्तु परिवर्तित शिक्षा प्रणाली क्या हो, किस ओर से ज्ञान पाने हो, यह विषय अभी तक नेताओं और विचारकों की मंत्रणा व वाणी में स्पष्ट नहीं हो पाया है। यह तो स्पष्ट ही है कि आज की शिक्षा मनुष्य के केवल भौतिक विकास पर ही बल देती है और उसी का परिणाम है कि नैतिक या आध्यात्मिक विकास के अभाव में आज का मनुष्य भौतिक साधनों का उपयोग अणुबमों व उद्जनबमों के रूप में कर रहा है। यदि शिक्षा के द्वारा मनुष्य का आध्यात्मिक पक्ष ऊंचा उठे तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' व 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का उदार सिद्धान्त चरितार्थ होने में विलम्ब न हो।

विद्यालयों में नैतिक प्रशिक्षण आवश्यक

विद्यालयों में धार्मिक प्रशिक्षण कैसे हो? यह अब तक एक विवादास्पद विषय है। विद्यार्थियों को आज भी धार्मिक प्रशिक्षण नहीं मिलता। इसके परिणाम भी लोग अनुशासन हीनता व संस्कृति शून्यता के रूप में प्रत्यक्ष देख रहे हैं। धार्मिक शिक्षा व्यवहार्य कैसे बने यह भी एक जटिलतम प्रश्न है। कोई भी स्पष्ट मार्ग अब तक दिखलाई नहीं दे रहा है। वर्तमान स्थितियों में जब कि भाषा भी एक प्रश्न चिन्ह बन रही है, निर्विरोध धार्मिक शिक्षा का रास्ता शीघ्र ही निकल जाए यह कठिन लगता है। वस्तुतः वातावरण में इस का समाधान एक मात्र यही रह जाता है कि विद्यार्थियों के लिए भूगोल, अंकगणित और इतिहास की तरह नैतिक-विज्ञान को भी स्वतंत्र विषय बना दिया जाए। सामान्य रूप से तो नैतिकता की बातें हर

विषय के साथ विद्यार्थी पढ़ते ही हैं, परन्तु जब तक नैतिक शिक्षा इसका न अनिवार्य विषय नहीं हो जाता तब तक विद्यार्थी उससे पूरा लाभ नहीं उठा सकते। धर्म का सर्वोत्तम अंग आचार-शुद्धि है। उसका विवेक नैतिक प्रशिक्षण से सुलभ हो जाता है। आज की शिक्षा प्रणाली में धर्म व आध्यात्म को इतना उपेक्षित कर दिया है कि भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त कुछ पढ़ने को रह ही नहीं गया है। आज के विद्यार्थी प्रातःकाल राम व सीता का नाम नहीं लेते समाचार पत्रों में दिलीप और मधुबाला की खोज करते हैं।

अध्यात्म विद्या के उदय की स्वर्णिम वेला

आज की शिक्षा व्यवस्था में पश्चिमी विद्याओं का प्राधान्य है। आज के विद्यार्थी यह सहजतया जानते है कि डार्विन का विकासवाद क्या है और मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है, पर वे यह जरा भी नहीं जानते कि भगवान् श्री महावीर का स्याद्वाद क्या है और श्री शंकर का अद्वैतवाद क्या है ? शिक्षा व्यवस्था की इसी अपूर्णता के कारण भारतवर्ष में आज पश्चिमी विद्याओं का आयात हो रहा है, पर यहां से पूर्वी विद्याओं का निर्यात नहीं हो पाता।

पश्चिमी विद्याएं भौतिकता-प्रधान है और पूर्वी विद्यायें अध्यात्म-प्रधान। जड़ विद्या के परमाणु बम, उदजनबम के रूप में होने वाले विकास के कारण आज का विश्व संत्रस्त है। वह शांति की खोज में है। अतः आज अध्यात्म-विद्याओं के उदय की स्वर्णिम वेला है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में आज जो भारत का गौरव बना है वह मात्र इसी का परिणाम है कि उसने शांति व सह-अस्तित्व की बात संसार के सामने रखी है। आज भारतीय विद्यार्थियों पर दायित्व है कि वह विरासत में मिली उन बहुमूल्य विद्याओं का अन्वेषण करें, पढ़ें व उनका दूर दूर तक निर्यात करें।

अध्यापक पुस्तक बनें

अध्यापक छात्रों के लिए स्वयं एक पोथी बनें, क्योंकि छात्र अन्य पुस्तकों से तो केवल शब्द व विषय ज्ञान ही प्राप्त करते हैं। आचरण का पाठ वे अध्यापक की जीती जागती पोथी से पढ़ते हैं। वह पोथी जितनी प्रशस्त होगी उतने ही बालक अधिक संस्कारित होंगे। उस पोथी का ही स्थायी प्रभाव उनके आचरणों पर पड़ता है। एक विद्यार्थी पाठ्यक्रम की पुस्तकों में पढ़ता है कि धूम्रपान नहीं करना चाहिए और अध्यापकों को बीड़ी सिगरेट पीते देखता है तो वह पहली पोथी का पाठ न पढ़ कर दूसरी पोथी का सबक सीखेगा।

अध्यापकों के हाथ में देश का सबसे महत्वपूर्ण निर्माण कार्य है। वे ऐसे कारखाने के कारीगर हैं जहां मानव और मानवता का निर्माण होता है। यदि लोकोक्ति की भाषा में कहा जाए तो मानव-निर्माण का कार्य विधाता ने किया और मानवता-निर्माण का अवशेष कार्य अध्यापक-जन कर रहे हैं। इस दायित्व को समझते हुए अध्यापक-जन अपना जीवन विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय बनाएं, जिससे कि वे देश पर छाई अनैतिकता की महा-तमिस्रा को चीर कर नैतिक नव जागरण की प्रकाश किरण ला सकें।

विषय के साथ विद्यार्थी पढ़ते ही हैं, परन्तु जब तक नैतिक शिक्षण स्वतन्त्र व अनिवार्य विषय नहीं हो जाता तब तक विद्यार्थी उससे पूरा लाभ नहीं उठा सकते। धर्म का सर्वोत्तम अंग आचार-शुद्धि है। उसका विवेक नैतिक प्रशिक्षण से सुलभ हो जाता है। आज की शिक्षा प्रणाली में धर्म व अध्यात्म को इतना उपेक्षित कर दिया है कि भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त कुछ पढ़ने को रह ही नहीं गया है। आज के विद्यार्थी प्रातःकाल राम व सीता का नाम नहीं लेते समाचार पत्रों में दिलीप और मधुबाला की खोज करते हैं।

अध्यात्म विद्या के उदय की स्वर्णिम वेला

आज की शिक्षा व्यवस्था मे पश्चिमी विद्याओ का प्राधान्य है। आज के विद्यार्थी यह सहजतया जानते है कि डार्विन का विकासवाद क्या है और मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है, पर वे यह जरा भी नहीं जानते कि भगवान् श्री महावीर का स्याद्वाद क्या है और श्री शंकर का अद्वैत-वाद क्या है ? शिक्षा व्यवस्था की इसी अपूर्णता के कारण भारतवर्ष में आज पश्चिमी विद्याओ का आयात हो रहा है, पर यहा से पूर्वी विद्याओं का निर्यात नहीं हो पाता।

पश्चिमी विद्याएं भौतिकता-प्रधान है और पूर्वी विद्यायें अध्यात्म-प्रधान। जड़ विद्या के परमाणु बम, उदजनबम के रूप में होने वाले विकास के कारण आज का विश्व संत्रस्त है। वह शांति की खोज में है। अतः आज अध्यात्म-विद्याओं के उदय की स्वर्णिम वेला है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में आज जो भारत का गौरव बना है वह मात्र इसी का परिणाम है कि उसने शांति व सह-अस्तित्व की बात संसार के सामने रखी है। आज भारतीय विद्यार्थियों पर दायित्व है कि वह विरासत में मिली उन बहुमूल्य विद्याओं का अन्वेषण करें, पढ़ें व उनका दूर दूर तक निर्यात करें।

अध्यापक पुस्तक बनें

अध्यापक छात्रों के लिए स्वयं एक पोथी बनें, क्योंकि छात्र अन्य पुस्तकों से तो केवल शब्द व विषय ज्ञान ही प्राप्त करते हैं। आचरण का पाठ वे अध्यापक की जीती जागती पोथी से पढ़ते हैं। वह पोथी जितनी प्रशस्त होगी उतने ही बालक अधिक संस्कारित होंगे। उस पोथी का ही स्थायी प्रभाव उनके आचरणों पर पड़ता है। एक विद्यार्थी पाठ्यक्रम की पुस्तकों में पढ़ता है कि धूम्रपान नहीं करना चाहिए और अध्यापकों को बीड़ी सिगरेट पीते देखता है तो वह पहली पोथी का पाठ न पढ़ कर दूसरी पोथी का सबक सीखेगा।

अध्यापकों के हाथ में देश का सबसे महत्वपूर्ण निर्माण कार्य है। वे ऐसे कारखाने के कारीगर हैं जहां मानव और मानवता का निर्माण होता है। यदि लोकोक्ति की भाषा में कहा जाए तो मानव-निर्माण का कार्य विधाता ने किया और मानवता-निर्माण का अवशेष कार्य अध्यापक-जन कर रहे हैं। इस दायित्व को समझते हुए अध्यापक-जन अपना जीवन विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय बनाएं, जिससे कि वे देश पर छाई अनैतिकता की महा-तमिस्त्रा को चीर कर नैतिक नव जागरण की प्रकाश किरण ला सकें।

विद्यार्थियों से

[illegible]

[illegible]

[illegible]

किन्तु उनकी भाषा में विज्ञान [illegible]

एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव एतावन्तं वियाणिया॥

अर्थात् ज्ञानी होने का सार यही है कि मनुष्य किसी की हिंसा न करे। यही विज्ञान है। आज के विद्यार्थी मार्क्सवाद की ओर अधिक झुकते हैं। मार्क्सवाद रोटी और कपड़े का दर्शन है। रोटी और कपड़े का दर्शन वह क्यों न हो जबकि उसकी इससे अधिक पहुंच ही नहीं है। लोग कहते हैं कि मार्क्सवाद ने द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद के रूप में एक नया दृष्टिकोण दिया है। चेतना भौतिक पदार्थों का एक संघर्ष जन्य परिणाम है। जड़ का ही अन्तिम विकास चैतन्य है। किन्तु वे यह नहीं जानते कि भारतीय दार्शनिकों ने इसका प्रत्युत्तर सहस्रों वर्ष पूर्व ही दे रखा है। 'नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः' अर्थात् सत् का अभाव और असत् का उत्पाद नहीं हो सकता। गुणात्मक परिवर्तन में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। हाइड्रोजन और आक्सीजन के मर्यादित सम्मिश्रण से जल पैदा होता है।

मार्क्सवाद कहता है कि यह गुणात्मक परिवर्तन है और दूसरे शब्दों में
यह असत् की उत्पत्ति है, पर भारतीय दार्शनिकों के शब्दों में यह न तो
आन्तरिक परिवर्तन है और न असत् की उत्पत्ति ही। जल का पार्थिव
स्वरूप तो केवल मूल का ही पर्यायान्तर है। अतः विद्यार्थियों को आज के
युग में भारतीय दर्शन में प्रतिपादित जीवन तत्त्व को अपना कर चलने की
विशेष आवश्यकता है। क्योंकि मार्क्सवाद जीवन तत्त्व का दर्शन नहीं है।

(रोहतक जाट कालेज में विद्यार्थियों के बीच दिए गए भाषण से)

विद्यार्थी भारतीय दर्शन के अन्वेषक बनें

आज विज्ञान का युग है ऐसा कहा जाता है। समाज विज्ञान के साथ
इतना घुल मिल गया है कि कभी कभी जीवन सत्य से परिपूर्ण भारतीय दर्शन
की उपेक्षा कर बैठता है। किन्तु आज के विद्यार्थी को यह समझना चाहिए
कि भारतीय दर्शन केवल कल्पनाओं का पुलिन्दा नहीं है जो विज्ञान के झोंकों
से क्षत-विक्षत हो जाएगा। उसके पीछे एक साधना, एक अन्वेषण व एक
दिव्य-दृष्टि रही है। यह समझ बैठना भी भूल है कि अब विज्ञान के युग
में दर्शन की आवश्यकता नहीं। उससे भी बड़ी भूल वे करते हैं जो दर्शन
और विज्ञान में केवल भेद ही समझते हैं। किन्तु अब वस्तु स्थिति ऐसी नहीं
रही है। दर्शन और विज्ञान की दूरी घटती जा रही है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर
जेम्स जीन्स के शब्दों म कहें तो दर्शन और विज्ञान की सीमा रेखा जो सब तरह
से निकम्मी लगती थी इन दिनों में होने वाले थियोरिटिकल साइन्स के विकास
ने उसे आकर्षक एवं महत्वपूर्ण बना दिया है। ऐसे बहुत से विषय हैं जिन्हें
हजारों वर्ष पूर्व ऋषि-मुनियों ने जैसे बताए आज का नवीन वैज्ञानिक युग
उनकी पुष्टि करने लगा है। उदाहरणार्थ-स्याद्वाद जैन दर्शन का महत्व-
पूर्ण सिद्धान्त है। आधुनिक विज्ञान में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने वाली प्रो०
आईन्सटीन की 'थियोरी ऑफ रिलेटिविटी" उसकी यथार्थता की पूरे बल
से पुष्टि करती है। सबसे मौलिक और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि

मार्क्सवाद कहता है कि यह गुणात्मक परिवर्तन है और दूसरे शब्दों में यह असत् की उत्पत्ति है, पर भारतीय दार्शनिकों के शब्दों में यह न तो अंतर्निहित परिवर्तन है और न असत् की उत्पत्ति ही। जल का पार्थिव स्वरूप तो केवल भूत का ही पर्यायान्तर है। अतः विद्यार्थियों को आज के युग में भारतीय दर्शन में प्रतिपादित जीवन सत्य को अपना कर चलने की विशेष आवश्यकता है। क्योंकि मार्क्सवाद जीवन सत्य का दर्शन नहीं है।

(सेंट्रल जाट कालेज में विद्यार्थियों के बीच दिए गए भाषण से)

विद्यार्थी भारतीय दर्शन के अन्वेषक बनें

आज विज्ञान का युग है ऐसा कहा जाता है। समाज विज्ञान के साथ इतना घुल मिल गया है कि कभी कभी जीवन सत्य से परिपूर्ण भारतीय दर्शन की अवज्ञा कर बैठता है। किन्तु आज के विद्यार्थी को यह समझना चाहिए कि भारतीय दर्शन केवल कल्पनाओं का पुलिन्दा नहीं है जो विज्ञान के झोंकों से क्षत-विक्षत हो जाएगा। उसके पीछे एक साधना, एक अन्वेषण व एक दिव्य-दृष्टि रही है। यह समझ बैठना भी भूल है कि अब विज्ञान के युग में दर्शन की आवश्यकता नहीं। उससे भी बड़ी भूल वे करते हैं जो दर्शन और विज्ञान में केवल भेद ही समझते हैं। किन्तु अब वस्तु स्थिति ऐसी नहीं रही है। दर्शन और विज्ञान की दूरी भरती जा रही है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जेम्स जीन्स के शब्दों में कहें तो दर्शन और विज्ञान की सीमा रेखा जो सब तरह से निकम्मी लगती थी इन दिनों में होने वाले थियोरिटिकल साइन्स के विकास ने इसे आकर्षक एवं महत्वपूर्ण बना दिया है। ऐसे बहुत से विषय हैं जिन्हें हजारों वर्ष पूर्व ऋषि-मुनियों ने जैसे बताए आज का नवीन वैज्ञानिक युग उनकी पुष्टि करने लगा है। उदाहरणार्थ-स्याद्वाद जैन दर्शन का महत्व-पूर्ण सिद्धान्त है। आधुनिक विज्ञान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने वाली प्रो० आईन्सटीन की 'थियोरी ऑफ रिलेटिविटी" उसकी यथार्थता की पूरे बल से पुष्टि करती है। सबसे मौलिक और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि

जैन, बौद्ध व वैदिक दर्शनों में जैसे आत्मा के अमर-अस्तित्व को स्वीकार किया गया है, वैसे ही वैज्ञानिकों को भी अब यह लगने लगा है कि इस विश्व में हम ऐसे अजनबी या यों ही आ टपकने वाले प्राणी तो नहीं हैं जैसा कि हम सोचा करते थे। आज के विद्यार्थी भारतीय दर्शन को भले नहीं, किन्तु उसमें प्रतिपादित सात्विक जीवन तत्त्व का सदैव अन्वेषण करते रहें।

मानवता युक्त मानव बनें

आज के युग की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि मानव अपने मूल-स्वरूप को खोता जा रहा है। मानवता की उदार भावना से दूर होकर आज राजनीति दुर्नीति बन गई है। विज्ञान विध्वंस और विनाश का दूत बन कर मानव के लिए अभिशाप हो गया है। विद्यार्थियों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे अपने जीवन की प्रत्येक गति-विधि में मानवता की रक्षा के लिए पूर्ण सतर्क रहें। अनेक विद्यार्थी अपने जीवन में महान् वैज्ञानिक, जननेता, वीर, समाज सुधारक बनने के स्वप्न देखते होंगे, पर वे कुछ भी बनने के पूर्व मानवता युक्त मानव बनें।

नैतिकता ही संजीवन औषधि

विद्यार्थी अगली पीढ़ी के कर्णधार व भावी भारत की तस्वीर है। जो भारतवर्ष अपने नैतिक व आध्यात्मिक आदर्शों से विश्व को उपकृत करता रहा व कर रहा है भविष्य में वही कार्य विद्यार्थियों को करना है। जीवन-व्यवहार में ऊंचे आदर्शों को चरितार्थ करना यही मनुष्यता की कसौटी है।

आज देश में नैतिकता का ह्रास हुआ है। जन-जीवन नाना रूढ़ियों व कुसंस्कारों से ग्रसित है। अर्थवाद के आतंक से मानवता पीड़ित हो चुकी है। प्रत्येक विद्यार्थी को नैतिकता की ज्योति शिखा हाथ में लेकर अमानवता

जैन, बौद्ध व वैदिक दर्शनों में जैसे आत्मा के अमर-अस्तित्व को स्वीकार किया गया है, वैसे ही वैज्ञानिकों को भी अब यह लगने लगा है कि इस विश्व में हम ऐसे अजनबी या यों ही आ टपकने वाले प्राणी तो नहीं हैं जैसा कि हम सोचा करते थे। आज के विद्यार्थी भारतीय दर्शन को भलें नहीं, किन्तु उसमें प्रतिपादित सात्विक जीवन तत्त्व का सदैव अन्वेषण करते रहें।

मानवता युक्त मानव बनें

आज के युग की यह सबसे बडी विडम्बना है कि मानव अपने मूल-स्वरूप को खोता जा रहा है। मानवता की उदार भावना से दूर होकर आज राजनीति दुर्नीति बन गई है। विज्ञान विध्वंस और विनाश का दूत बन कर मानव के लिए अभिशाप हो गया है। विद्यार्थियों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे अपने जीवन की प्रत्येक गति-विधि में मानवता की रक्षा के लिए पूर्ण सतर्क रहें। अनेक विद्यार्थी अपने जीवन में महान् वैज्ञानिक, जननेता, वीर, समाज सुधारक बनने के स्वप्न देखते होंगे, पर वे कुछ भी बनने के पूर्व मानवता युक्त मानव बनें।

नैतिकता ही संजीवन औषधि

विद्यार्थी अगली पीढी के कर्णधार व भावी भारत की तस्वीर है। जो भारतवर्ष अपने नैतिक व आध्यात्मिक आदर्शों से विश्व को उपकृत करता रहा व कर रहा है भविष्य में वही कार्य विद्यार्थियो को करना है। जीवन-व्यवहार में ऊंचे आदर्शों को चरितार्थ करना यही मनुष्यता की कसौटी है।

आज देश में नैतिकता का ह्रास हुआ है। जन-जीवन नाना रूढ़ियों व कुसंस्कारों से ग्रसित है। अर्थवाद के आतंक से मानवता पीड़ित हो चकी है। प्रत्येक विद्यार्थी को नैतिकता की ज्योति शिखा हाथ में लेकर अमानवता

उतरी, नैतिकता और धर्म के ऊंचे आदर्शों की बातें जीवन में नहीं आईं तो उस विद्या से क्या हुआ ?

धर्म शब्द सबको प्रिय है। उसका आचरण नैतिकता है। नीति और धर्म का गहरा सम्बन्ध है। शेक्सपियर ने कहा है—जहां धर्म में नैतिकता नहीं आई वहां वह धर्म विना फल के वृक्ष जैसा है और जिस नीति के साथ धर्म नहीं वह वृक्ष हरा भरा तो है, फल भी है, फूल भी हैं पर उसकी जड़ नहीं है। बताइए ऐसा पेड़ कब तक खड़ा रह सकता है। अस्तु—कोई व्यक्ति तभी धार्मिक बन सकता है जब कि उसका आचरण अच्छा हो। धर्म किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित न होकर जीवन के कण कण और क्षण क्षण से सम्बन्धित होना चाहिए। बचपन जीवन की प्रारम्भिक अवस्था है। विद्यार्थी यदि अभी से सुसंस्कारी बनने का प्रयत्न करेंगे तो उनका भावी जीवन उन्नत होगा।

विद्यार्थी वर्ग से ही नैतिक निर्माण सम्भव

आज भारतवर्ष की निर्माण वेला है। बड़े बड़े बान्धों का निर्माण हो रहा है, नहरें बनाई जा रही हैं, बड़े बड़े उद्योग धन्धों और कल-कारखानों का जाल बिछाया जा रहा है, पर सबसे बड़े निर्माण का दायित्व किन्हीं पर है तो वह स्कूल, कालेज और यूनिवरसिटी पर है। क्योंकि भावी पीढ़ी के लाखों कर्णधार उन्हीं के तो नियंत्रण में हैं। संसार में भारत की पहचान इससे नहीं होगी कि यहां बड़े बड़े बांध, नहरें और उद्योग धन्धे कितने हैं, अपितु इससे होगी कि भारतीयों का चरित्र कितना उज्वल और नैतिक स्तर कितना उन्नत है। इस तरह भौतिक-निर्माण से अधिक नैतिक-निर्माण की आवश्यकता है। इसका दायित्व विद्यार्थी वर्ग पर विशेष रूप से आता है। नैतिक निर्माण का प्रारम्भ विद्यार्थी वर्ग से ही हो सकता है, बड़े और बूढ़ों से निर्माण नहीं, सुधार ही हो सकता है।

उतरी, नैतिकता और धर्म के ऊंचे आदर्शों की बातें जीवन में नहीं आईं तो उस विद्या से क्या हुआ ?

धर्म शब्द सबको प्रिय है। उसका आचरण नैतिकता है। नीति और धर्म का गहरा सम्बन्ध है। शेक्सपियर ने कहा है—जहां धर्म में नैतिकता नहीं आई वहां वह धर्म बिना फल के वृक्ष जैसा है और जिस नीति के साथ धर्म नहीं वह वृक्ष हरा भरा तो है, फूल भी है, फल भी हैं पर उसकी जड़ नहीं है। बताइए ऐसा पेड़ कब तक खड़ा रह सकता है। अस्तु—कोई व्यक्ति तभी धार्मिक बन सकता है जब कि उसका आचरण अच्छा हो। धर्म किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित न होकर जीवन के कण कण और क्षण क्षण से सम्बन्धित होना चाहिए। बचपन जीवन की प्रारम्भिक अवस्था है। विद्यार्थी यदि अभी से सुसंस्कारी बनने का प्रयत्न करेंगे तो उनका भावी जीवन उन्नत होगा।

विद्यार्थी वर्ग से ही नैतिक निर्माण सम्भव

आज भारतवर्ष की निर्माण बेला है। बड़े बड़े बान्धों का निर्माण हो रहा है, नहरें बनाई जा रही हैं, बड़े बड़े उद्योग धन्धों और कल-कारखानों का जाल बिछाया जा रहा है, पर सबसे बड़े निर्माण का दायित्व किन्हीं पर है तो वह स्कूल, कालेज और यूनिवरसिटी पर है। क्योंकि भावी पीढ़ी के लाखों कर्णधार उन्हीं के तो नियंत्रण में हैं। संसार में भारत की पहचान इससे नहीं होगी कि यहां बड़े बड़े बांध, नहरें और उद्योग धन्धे कितने हैं, अपितु इससे होगी कि भारतीयों का चरित्र कितना उज्वल और नैतिक स्तर कितना उन्नत है। इस तरह भौतिक-निर्माण से अधिक नैतिक-निर्माण की आवश्यकता है। इसका दायित्व विद्यार्थी वर्ग पर विशेष रूप से आता है। नैतिक निर्माण का प्रारम्भ विद्यार्थी वर्ग से ही हो सकता है, बड़े और बूढ़ों से निर्माण नहीं, सुधार ही हो सकता है।

विद्यार्थियों में नैतिक जागृति आवश्यक

विभिन्न वर्गों में व्याप्त बुराइयां परस्पर मिलकर इतनी शृंखलाबद्ध हो गई हैं कि कोई भी वर्ग इसे तोड़ने के लिये पर्याप्त सामर्थ्य नहीं रखता। विद्यार्थी वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जो उस शृंखला की कड़ी होने से मुक्त रह रहा है। वह उस पर प्रहार कर सकता है। अतः आवश्यक है विद्यार्थी नैतिक जागृति के अग्रदूत बनें। आज के विद्यार्थी ही कल के व्यापारी, राजकर्मचारी, नेता बनेंगे। उनका अपना निर्माण ही समग्र भारतवर्ष का निर्माण है, उनकी नैतिक जागृति ही देश के दूषित वातावरण को शुद्ध बना सकती है।

कालेज के वातावरण में हम साधुओं का आना बहुत सारे विद्यार्थियों को अद्भुत सा लगता होगा क्योंकि वे साधु संस्कृति से परिचित नहीं हैं। पर उन्हें जानना चाहिए भारतीय संस्कृति में साधु-समाज का कितना महत्त्वपूर्ण योग रहा है। आगम, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, व बौद्ध त्रिपिटक आदि भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ ऋषि महर्षियों व साधु निर्ग्रन्थों की ही तो देन है। क्या एक भी ग्रन्थ बताया जा सकता है जो आर्य संस्कृति में मूलभूत हो और वह साधु सन्तों की देन न हो।

शान्ति व संयम से काम लें

विद्यार्थी जीवन का लक्ष्य विद्यार्जन करना होता है। इसे भूल कर जब विद्यार्थी उत्तेजनात्मक आन्दोलन में चले जाते हैं, तब वे ध्येय विहीन होकर अपने जीवन को सदा के लिए निराशा व असफलताओं पर बलिदान कर देते हैं। लक्ष्य तक वही व्यक्ति पहुंचता है जो इधर उधर झांके बिना अना-सक्त होकर उस ओर बढ़ता ही रहे। आजके विद्यार्थी थोड़े से प्रलोभन में अपनी राह भूल कर भटक जाते हैं। उन्हें चाहिए कि विद्यार्थी-जीवन में जो भी समस्या उनके सामने आए, उसे सुलझाने के लिए वे शांति

विद्यार्थियों में नैतिक जागृति आवश्यक

विभिन्न वर्गों में व्याप्त बुराइयां परस्पर मिलकर इतनी श्रृंखलाबद्ध हो गई हैं कि कोई भी वर्ग इसे तोड़ने के लिये पर्याप्त सामर्थ्य नहीं रखता। विद्यार्थी वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जो उस श्रृंखला की कड़ी होने से मुक्त रह रहा है। वह उस पर प्रहार कर सकता है। अतः आवश्यक है विद्यार्थी नैतिक जागृति के अग्रदूत बनें। आज के विद्यार्थी ही कल के व्यापारी, राजकर्मचारी, नेता बनेंगे। उनका अपना निर्माण ही समग्र भारतवर्ष का निर्माण है, उनकी नैतिक जागृति ही देश के दूषित वातावरण को शुद्ध बना सकती है।

कालेज के वातावरण में हम साधुओं का आना बहुत सारे विद्यार्थियों को अद्भुत सा लगता होगा क्योंकि वे साधु संस्कृति से परिचित नहीं हैं। पर उन्हें जानना चाहिए भारतीय संस्कृति में साधु-समाज का कितना महत्वपूर्ण योग रहा है। आगम, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, व बौद्ध त्रिपिटक आदि भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ ऋषि महर्षियों व साधु निर्ग्रन्थों की ही तो देन हैं। क्या एक भी ग्रन्थ बताया जा सकता है जो आर्य संस्कृति में मूलभूत हो और वह साधु सन्तों की देन न हो।

शान्ति व संयम से काम लें

विद्यार्थी जीवन का लक्ष्य विद्यार्जन करना होता है। इसे भूल कर जब विद्यार्थी उत्तेजनात्मक आन्दोलन में चले जाते हैं, तब वे ध्येय विहीन होकर अपने जीवन को सदा के लिए निराशा व असफलताओं पर बलिदान कर देते हैं। लक्ष्य तक वही व्यक्ति पहुंचता है जो इधर उधर झांके बिना अन्य-अनाकर्षण होकर उस ओर बढ़ता ही रहे। आज के विद्यार्थी थोड़े से प्रलोभन में अपना लक्ष्य भूल कर भटक जाते हैं। उन्हें चाहिए कि विद्यार्थी-जीवन में जो भी समस्या उनके सामने आए, उसे सुलझाने के लिए वे शांति

कार्यकर्ताओं में

कार्यकर्ता भाग्यवादी न बने

कार्यकर्ता का धर्म कार्य करना है। निश्चिन्त होकर बैठे रहने की बात उसमें जरा भी नहीं आती। आश्चर्य होता है जब कार्यकर्ताओं के मुंह से सुना जाता है यह काम मेरे से नहीं होने का है, या मुझे समय नहीं है या जैसी होनहार होगी वैसा होगा आदि। ये सारे कथन उनके अकर्मण्य और भाग्य-वादी होने के सूचक होते हैं। पुरुषार्थी के सामने नहीं होने का कुछ होता ही नहीं। भारतवर्ष में बहुत सारे लोग प्रातः उठते समय सर्वप्रथम अपनी हथेली को देखते हुए यह कहा करते हैं :—

> कराग्रे वसति लक्ष्मी, करमध्ये सरस्वती।
> करमूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते कुरु दर्शनम्।

हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी, मध्य भाग में सरस्वती और उसके मूल में ब्रह्मा निवास करते हैं, इसलिए प्रभात में हस्त-दर्शन करना चाहिए। मैं समझता हूं इस उक्ति में यही वास्तविकता छिपी है कि पुरुषार्थ में ही लक्ष्मी, सरस्वती और मोक्ष या भगवान् का निवास है। पुरुषार्थ का प्रतीक हाथ है, इसलिए प्रातः उठते ही अपने हाथों को सम्भालो। कार्यकर्ता कभी भाग्यवादी न बनें। भाग्य सदा परोक्ष रहता है और पुरुषार्थ प्रत्यक्ष। अतः जीवन-व्यवहार में केवल पुरुषार्थ का ही महत्व रह जाता है।

कार्यकर्ताओं में सबसे बड़ी बीमारी यह है कि वे सोचते बहुत हैं और करते उसका थोड़ा भी नहीं। योजनाओं के निर्माण में समय और शक्ति खप जाती है और वे योजनाएं केवल कागजी ही रह जाती हैं। कार्यकर्ता

कार्यकर्ताओं ने
इस बात को न भूलें कि उनके मस्तिष्क एक और हाथ दो हैं। जितना उन्हें
सोचना है उससे दुगुना उन्हें करना है ।
(सब्जी मंडी-दिल्ली के कार्यकर्ताओं के बीच दिए गए भाषण से)

जनतंत्र की सफलता का आधार : नैतिक व बौद्धिक उच्चता

कोटि कोटि जनता की दीर्घ साधना के बाद जनतंत्र का उदय हुआ है।
परन्तु जनतंत्र के प्रतीक व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए कि बिना पर्याप्त
बौद्धिक विकास के यहां जनतंत्र की मञ्जिल भी दूर रहेगी। जनतंत्र एक ऐसी
शासन पद्धति है जिसमें व्यक्ति व्यक्ति को अपने आपमें उत्तरदायी मानना
पड़ता है। इसमें कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मेरी अनैतिकता का
दूसरों से क्या सम्बन्ध है? और उसका समाज और देश पर क्या प्रभाव पड़ता
है ? जिस प्रकार दुग्धालय में अच्छे से अच्छा व साधारण से साधारण दूध
आकर एक रस बनता है उसी प्रकार अच्छे व बुरे व्यक्तियों द्वारा होने वाले
मतदान से ही जनतंत्री शासन व्यवस्था बनती है। उसके अच्छे व बुरेपन
में सबका साझा है। इस पद्धति के अनुसार समाज व देश का आगे बढ़ना
व पीछे खिसकना राजनैतिक कार्यकर्ताओं, विधान सभा के सदस्यों, संसद
के सदस्यों एवं मंत्रियों पर निर्भर है, क्योंकि वे ही शासन व्यवस्था के स्तम्भ
हैं। अतः उन्हें अपने दायित्व को नहीं भूलना चाहिए और जनता को जिसके
कि द्वारा शासन–अधिकारियों व विधायकों का निर्वाचन होता है अपनी
नैतिक व बौद्धिक उच्चता को अक्षुण्ण रखना चाहिए। जनतंत्र की सफ-
लता का एकमात्र यही आधार है।

यद्यपि जनतंत्र दलबंदी व गठबंदी को स्वीकार करता है किन्तु इसका
तात्पर्य यह नहीं होता कि अपने दल व नेता की बुराइयों का भी समर्थन
किया जाए और प्रतिपक्षी की अच्छाइयों पर भी परदा डालने का प्रयत्न

कार्यकर्ताओं में

कार्यकर्ता भाग्यवादी न बने

कार्यकर्ता का धर्म कार्य करना है। निश्चिन्त होकर बैठे रहने की बात उसमें जरा भी नहीं आती। आश्चर्य होता है जब कार्यकर्ताओं के मुंह से ा जाता है यह काम मेरे से नहीं होने का है, या मुझे समय नहीं है या जैसी नहार होगी वैसा होगा आदि। ये सारे कथन उनके अकर्मण्य और भाग्य- दी होने के सूचक होते हैं। पुरुषार्थी के सामने नहीं होने का कुछ होता ही हीं। भारतवर्ष में बहुत सारे लोग प्रातः उठते समय सर्वप्रथम अपनी थेली को देखते हुए यह कहा करते हैं :—

> कराग्रे वसति लक्ष्मी, करमध्ये सरस्वती।
> करमूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते कुरु दर्शनम्।

हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी, मध्य भाग में सरस्वती और उसके मूल में ह्मा निवास करते हैं, इसलिए प्रभात में हस्त-दर्शन करना चाहिए। मैं मझता हूं इस उक्ति में यही वास्तविकता छिपी है कि पुरुषार्थ में ही लक्ष्मी, रस्वती और मोक्ष या भगवान् का निवास है। पुरुषार्थ का प्रतीक हाथ ;, इसलिए प्रातः उठते ही अपने हाथों को सम्भालो। कार्यकर्ता कभी भाग्यवादी न बनें। भाग्य सदा परोक्ष रहता है और पुरुषार्थ प्रत्यक्ष। अतः जीवन-व्यवहार में केवल पुरुषार्थ का ही महत्व रह जाता है।

कार्यकर्ताओं में सबसे बड़ी बीमारी यह है कि वे सोचते बहुत हैं और करते उसका थोड़ा भी नहीं। योजनाओं के निर्माण में समय और शक्ति खप जाती है और वे योजनाएं केवल कागजी ही रह जाती हैं। कार्यकर्ता

इस बात को न भूलें कि उनके मस्तिष्क एक और हाथ दो हैं। जितना उन्हें सोचना है उससे दुगुना उन्हें करना है ।

(सब्जी मंडी-दिल्ली के कार्यकर्ताओं के बीच दिए गए भाषण से)

जनतंत्र की सफलता का आधार : नैतिक व बौद्धिक उच्चता

कोटि कोटि जनता की दीर्घ साधना के बाद जनतंत्र का उदय हुआ है। परन्तु जनतंत्र के प्रतीक व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए कि बिना पर्याप्त बौद्धिक विकास के यहाँ जनतंत्र की मञ्जिल भी दूर रहेगी। जनतंत्र एक ऐसी शासन पद्धति है जिसमें व्यक्ति व्यक्ति को अपने आपमें उत्तरदायी मानना पड़ता है। इसमें कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मेरी अनैतिकता का दूसरों से क्या सम्बन्ध है? और उसका समाज और देश पर क्या प्रभाव पड़ता है ? जिस प्रकार दुग्धालय में अच्छे से अच्छा व साधारण से साधारण दूध आकर एक रस बनता है उसी प्रकार अच्छे व बुरे व्यक्तियों द्वारा होने वाले मतदान से ही जनतंत्री शासन व्यवस्था बनती है। इसके अच्छे व बुरेपन में सबका साझा है। इस पद्धति के अनुसार समाज व देश का आगे बढ़ना व पीछे खिसकना राजनैतिक कार्यकर्ताओं, विधान सभा के सदस्यों, संसद के सदस्यों एवं मंत्रियों पर निर्भर है, क्योंकि वे ही शासन व्यवस्था के स्तम्भ हैं। अतः उन्हें अपने दायित्व को नहीं भूलना चाहिए और जनता को जिसके कि द्वारा शासन–अधिकारियों व विधायकों का निर्वाचन होता है अपनी नैतिक व बौद्धिक उच्चता को अक्षुण्ण रखना चाहिए। जनतंत्र की सफलता का एकमात्र यही आधार है।

यद्यपि जनतंत्र दलबंदी व गठबंदी को स्वीकार करता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि अपने दल व नेता की बुराइयों का भी समर्थन किया जाए और प्रतिपक्षी की अच्छाइयों पर भी परदा डालने का प्रयत्न

आरक्षकों में

मनुष्य मानवता के अभाव में दुःखी

लोग कहते हैं मनुष्य रोटी व कपड़े के अभाव में दुःखी है पर सच बात तो यह है वह मानवता के अभाव में दुःखी है। दो भाइयों के पास यदि दो ही रोटियां हैं और उनमें भ्रातृत्व है तो एक एक रोटी खाकर भी दोनों सुख मान सकते हैं। यदि दोनों में भ्रातृत्व नहीं है तो हो सकता है एक भाई पांच रोटियां अपने कुत्ते को भी डाल दे और एक भाई भूख के मारे कराहता रहे। ऋषि मुनियों ने कहा है—उदार चरित्र वाले लोगों के लिए विश्व ही कुटुम्ब है। मानव मानव का बन्धु है पर आज मानवता के अभाव में अमीरी व गरीबी के भेद दुर्भेद्य हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त आज के समाज की जितनी समस्यायें व संघर्ष हैं सब अमानवता की आधार भूमि पर ही अवस्थित है

पुलिस वर्ग भी मानव समाज का एक विशेष अंग है। उसे रिश्वत लेकर दुविधा ग्रस्त लोगों की परिस्थिति से नाजायज फायदा नहीं उठाना चाहिए। आश्चर्य की बात तो यह है बहुत सारे लोगों ने रिश्वत को पाप मानना ही छोड़ दिया है।

(नई दिल्ली पुलिस अधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

विज्ञान के बिना मनुष्य जी सकता है पर धर्म के बिना नहीं

विज्ञान ने अनन्त अन्तरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह का संचार कर असम्भव को सम्भव कर बताया है। निकट भविष्य में पशुओं व उसके बाद मनुष्य को

आरक्षकों में

मनुष्य मानवता के अभाव में दुःखी

लोग कहते हैं मनुष्य रोटी व कपड़े के अभाव में दुःखी है पर सच बात तो यह है वह मानवता के अभाव में दुःखी है। दो भाइयों के पास यदि दो ही रोटियां हैं और उनमें भ्रातृत्व है तो एक एक रोटी खाकर भी दोनों सुख मान सकते हैं। यदि दोनों में भ्रातृत्व नहीं है तो हो सकता है एक भाई पांच रोटियां अपने कुत्ते को भी डाल दे और एक भाई भूख के मारे कराहता रहे। ऋषि मुनियों ने कहा है—उदार चरित्र वाले लोगों के लिए विश्व ही कुटुम्ब है। मानव मानव का बन्धु है पर आज मानवता के अभाव में अमीरी व गरीबी के भेद दुर्भेद्य हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त आज के समाज की जितनी समस्यायें व संघर्ष हैं सब अमानवता की आधार भूमि पर ही अवस्थित है

पुलिस वर्ग भी मानव समाज का एक विशेष अंग है। उसे रिश्वत लेकर दुविधा ग्रस्त लोगों की परिस्थिति से नाजायज फायदा नहीं उठाना चाहिए। आश्चर्य की बात तो यह है बहुत सारे लोगों ने रिश्वत को पाप मानना ही छोड़ दिया है।

(नई दिल्ली पुलिस अधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

विज्ञान के बिना मनुष्य जी सकता है पर धर्म के बिना नहीं

विज्ञान ने अनन्त अन्तरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह का संचार कर असम्भव को सम्भव कर बताया है। निकट भविष्य में पशुओं व उसके बाद मनुष्य को

रक्षक भक्षक न बनें

पुलिस का दायित्व जनता के जीवन और धन की रक्षा करना है। इसीलिए तो उसका नाम आरक्षक है। पर कभी कभी जब वे समाज विरोधी तत्त्वों के साथ मिलकर उनके संरक्षण का भार अपने पर ले लेते हैं और निर-पराध नागरिकों पर अत्याचार करने लगते हैं तब वे 'रक्षक ही भक्षक' की कहावत चरितार्थ कर देते हैं। सच बात तो यह है जब पुलिस के नौज-वान व अधिकारी ईमानदार हो जाते हैं तो जनता से भी बहुत प्रकार के भ्रष्टाचार अनायास ही मिट जाते हैं। अवैध व्यवसाय चलाने वाले लोग बहुधा यह कहा करते हैं——हमें राजकीय भय नहीं होता। क्योंकि राज-कर्मचारी भी तो आखिर बाल बच्चे वाले ही मनुष्य हैं। पैसे की आवश्यकता [illegible] के भी तो है।

रिश्वत लेने वाले लोगों ने अपने बचाव का भी अनोखा उत्तर गढ़ लिया है। उनसे जब कहा जाता है—भैया! जिनसे आप पैसे लेते हो उसे किसी जन्म में चुकाने भी तो पड़ेंगे? वे कहते हैं—हमारा विश्वास तो यह है कि पिछले जन्म में हमारे से जिन्होंने नाजायज पैसे लिए थे वे लोग अब रिश्वत देकर हमें पैसे चुका रहे हैं। इतना [illegible] ऐसे लोग पापी कैसे हो सकते हैं? यह उत्तर सर्वथा नैतिक साहस की कमी का परिचायक है। अणुव्रत आन्दोलन का उदय मानव की इन दुर्बलताओं को मिटाने और मनुष्य की आत्मिक व नैतिक शुद्धि करने के लिए हुआ है। अणुव्रत एक साधन है जिससे मनोबल अर्जित होता है और व्यक्ति अपनी मंजिल तक पहुंचने में कहीं डगमगाता नहीं।

(दिल्ली-कोतवाली में पुलिस अधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

चरित्र की प्रतिष्ठा आवश्यक

अच्छे व बुरे लोग सभी काल में रहे हैं—कलियुग में भी, सतयुग में भी। अन्तर इतना ही है कि सतयुग में समाज की निष्ठा चरित्र पर आधारित रही है। दुराचारी लोग समाज में सम्मानित होकर नहीं रह पाते थे। सीता का निर्वासन इस बात का सूचक है कि दुराचार के प्रति चाहे, वह अवास्तविक ही क्यों न हो समाज कितना असहिष्णु होता था। आज की बात सर्वथा इसके विपरीत है। आज तो बुरे लोगों के बहुमत में अच्छे लोगों का जीना कष्टप्रद हो रहा है। रिश्वत लेने का विरोध करने वाले लोग रिश्वत लेने वाले लोगों द्वारा मुसीबत में फंसाए जाते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण देखे गए हैं। यह चारित्रिक निष्ठा का पतन है, जिसका परिणाम समाज के लिये बहुत गम्भीर हो सकता है।

(आरक्षक निकाय (दिल्ली) में दिए गए भाषण से)

महिलाओं में

महिलाएं नैतिक नव निर्माण में सक्रिय योग दें

भारतीय नारी का इतिहास त्याग, संयम व कर्तव्य पालन की भावना से ओतप्रोत है, पर आज के नारी समाज में भीरुता, अन्धविश्वास व परावलम्बन ने घर कर लिया है। जागृति के इस युग में उसे बदलना होगा। महिला समाज यदि प्रबुद्ध हो जाता है तो समाज में जन्म, विवाह व मृत्यु सम्बन्धी आडम्बर की प्रवृत्तियां सहज ही मिट जाती हैं। फिर दहेज और ठहराव से होने वाले दुष्परिणाम समाज को नहीं भोगने पड़ते। महिलाएं चाहें तो रिश्वत, मिलावट आदि नाना अनैतिकताओं में डूबे पुरुष समाज को भी बहुत कुछ सीधे रास्ते पर ला सकती हैं और भावी पीढ़ी के कर्णधार बालकों को आदर्श नागरिक बना सकती हैं। आज आवश्यकता है कि महिलाएं निष्क्रिय व तटस्थ न रह कर देश के नैतिक नव-निर्माण में सक्रिय योग दें।

(दिल्ली में अणुव्रत महिला समाज की स्थापना के अवसर पर दिए गए भाषण से)

ठहराव एक सामाजिक अभिशाप

भारतवर्ष के बहुत सारे लोग नदियों को पवित्र मानते हैं और अपनी पुत्रियों के नाम गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी आदि देते हैं, पर समाज में आज उनकी जो दयनीय दशा है वह किसी से छिपी नहीं है। विवाह के नाम पर वे उल्टा मोल देकर बिकती हैं। जिनके माता-पिता भरपूर मोल नहीं दे सकते तो उन्हें आजन्म अविवाहित रह जाने व आत्महत्या कर लेने पर भी विवश होना पड़ता है। जिस नारी जाति की अमृतोपम दुग्धधारा ने मनुष्य मात्र को पाला है उसके प्रति पुरुष-जाति का यह व्यवहार!

(दिल्ली में ठहराव विरोधी अभियान के अवसर पर दिए गए भाषण से)

नारी और पुरुष के व्यवहारों में संघर्ष शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। इससे वर्गीय भावनाओं को उत्तेजन मिलता है। कभी, ऐसा भी अवसर आ सकता है जब देश व्यापी चुनावों के अवसर पर सब महिलाएं एक ओर सब पुरुष एक; देखें कि आखिर देश की सत्ता किसके हाथ में आती है।

(बंबई में छात्राओं व अध्यापिकाओं की सभा में दिए गए भाषण से)

महिलाएं नैतिक नव निर्माण में सक्रिय योग दें

भारतीय नारी का इतिहास त्याग, संयम व कर्तव्य पालन की भावना से ओतप्रोत है, पर आज के नारी समाज में भीरुता, अन्धविश्वास व पराव-लम्बन ने घर कर लिया है। जागृति के इस युग में इसे बदलना होगा। महिला समाज यदि प्रबुद्ध हो जाता है तो समाज में जन्म, विवाह व मृत्यु सम्बन्धी आडम्बर की प्रवृत्तियां सहज ही मिट जाती हैं। फिर दहेज और ठहराव से होने वाले दुष्परिणाम समाज को नहीं भोगने पड़ते। महिलाएं चाहें तो रिश्वत, मिलावट आदि नाना अनैतिकताओं में डूबे पुरुष समाज को भी बहुत कुछ सीधे रास्ते पर ला सकती हैं और भावी पीढ़ी के कर्ण-धार बालकों को आदर्श नागरिक बना सकती हैं। आज आवश्यकता है कि महिलाएं निष्क्रिय व तटस्थ न रह कर देश के नैतिक नव-निर्माण में सक्रिय योग दें।

(दिल्ली में अणुव्रत महिला समाज की स्थापना के अवसर पर दिए गए भाषण से)

ठहराव एक सामाजिक अभिशाप

भारतवर्ष के बहुत सारे लोग नदियों को पवित्र मानते हैं और अपनी पुत्रियों के नाम गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी आदि देते हैं, पर समाज में आज उनकी जो दयनीय दशा है वह किसी से छिपी नहीं है। विवाह के नाम पर वे उल्टा मोल देकर बिकती हैं। जिनके माता-पिता भरपूर मोल नहीं दे सकते तो उन्हें आजन्म अविवाहित रह जाने व आत्महत्या कर लेने पर भी विवश होना पड़ता है। जिस नारी जाति की अमृतोपम दुग्धधारा ने मनुष्य मात्र को पाला है उसके प्रति पुरुष-जाति का यह व्यवहार!

(दिल्ली में ठहराव विरोधी अभियान के अवसर पर दिए गए भाषण से)

महिलाओं में 'मैं नहीं' 'तू महान्' से समस्याओं का समाधान

आज संघर्ष का युग है। नाना वर्गों में नाना संघर्ष छिड़ रहे हैं। यहां तक कि स्त्री पुरुष की [illegible] हैं पुरुष और स्त्री, इसलिए तो अधिकार [illegible] में भी यह संघर्ष जोरों से चल रहा है। नारी-समाज भी नाना संगठन आदि अधिकार रक्षा के लिए बना रहा है। इस गौरव से नारी की प्रगति में तक समय अब दोष भी आने लगा है जब पतियों का अपना अधिकार रक्षा के लिए पृथक् संगठन बनाना पड़ेगा। पर वस्तु स्थिति यह है कि जहां संघर्ष है वहां हिंसा है। हिंसा भारतीय संस्कृति के अनुरूप नहीं है। भारतीय नारी ने अहिंसा, प्रेम और उत्सर्ग के आधार पर अपने अधिकार सुरक्षित ही नहीं रखे प्रत्युत पुरुष पर हुकूमत भी की है। संघर्ष में अहं होता है। वहां प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग से अपने को बड़ा बताता है। पर ऐसा करने से कोई वर्ग किसी को बड़ा नहीं मान लेता। अहिंसा और प्रेम का विवेक जब जागरूक होता है तब दोनों वर्गों में दोनों ही एक दूसरे को बड़ा मानते हैं। नारी और पुरुष के बीच भी यदि 'मैं महान्' की बात रही तो तनाव बढ़ेगा। जब दोनों में से कोई भी वर्ग 'तू महान्' का उद्घोषण करेगा तभी नारी और पुरुष में चलने वाले तनाव समाप्त होंगे।

नारी और पुरुष के व्यवहारों में संघर्ष शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। इससे वर्गीय भावनाओं को उत्तेजन मिलता है। कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है जब देश व्यापी चुनावों के अवसर पर सब महिलाएं एक ओर सब पुरुष एक; देखें कि आखिर देश की सत्ता किसके हाथ में आती है।

(बंबई में छात्राओं व अध्यापिकाओं की सभा में दिए गए भाषण से)

महिलाओं में

'मैं नहीं' 'तू महान्' से समस्याओं का समाधान

आज संघर्ष का युग है। नाना वर्गों में नाना संघर्ष छिड़ रहे हैं। यहां तक कि [illegible] पुरुष और स्त्री, दम्पति की अभिन्न इकाई में भी यह संघर्ष जोरों से चल रहा है। नारी-समाज भी नाना संगठन अपनी अधिकार रक्षा के लिए बना रहा है। [illegible] नारी की प्रगति से यह समय अब दौड़ ही आने वाला है जब महिला का अपनी अधिकार रक्षा के लिए पृथक् संगठन मजबूत होगा। पर वस्तु स्थिति यह है कि जहां संघर्ष है वहां हिंसा है। हिंसा भारतीय संस्कृति के अनुरूप नहीं है। भारतीय नारी ने अहिंसा, प्रेम और उत्सर्ग के आधार पर अपने अधिकार सुरक्षित ही नहीं रखे प्रत्युत पुरुष पर हुकूमत भी की है। संघर्ष में अहं होता है। वहां प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग से अपने को बड़ा बताता है। पर ऐसा करने से कोई वर्ग किसी को बड़ा नहीं मान लेता। अहिंसा और प्रेम का विवेक जब जागरूक होता है तब दोनों वर्गों में दोनों ही एक दूसरे को बड़ा मानते हैं। नारी और पुरुष के बीच भी यदि 'मैं महान्' की बात रही तो तनाव बढ़ेगा। जब दोनों में से कोई भी वर्ग 'तू महान्' का उद्घोषण करेगा तभी नारी और पुरुष में चलने वाले तनाव समाप्त होंगे।

नारी और पुरुष के व्यवहारों में संघर्ष शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। इससे वर्गीय भावनाओं को उत्तेजन मिलता है। कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है जब देश व्यापी चुनावों के अवसर पर सब महिलाएं एक ओर सब पुरुष एक; देखें कि आखिर देश की सत्ता किसके हाथ में आती है।

(बंबई में छात्राओं व अध्यापिकाओं की सभा में दिए गए भाषण से)

[illegible]

[illegible]

आज प्रत्येक नागरिक का चाहे वह युवक हो या वृद्ध [illegible] कर्तव्य है कि इस अमानवीय प्रथा का बहिष्कार करे। विद्यार्थियों का दायित्व इस विषय में और भी बढ़ जाता है। क्योंकि उन्हें ही नई सृष्टि का निर्माण करना है। यदि वे अपने जीवन की साथिन [illegible] और [illegible] के आधार पर चुनेंगे तो उनके भविष्य के लिए इससे बढ़ कर कोई भूल नहीं होगी।

शिक्षित नारी रूढ़ियों से दूर रहें

घर में कुछ दहेज या छूछक आता है या अपनी लड़की को दिया जाता है तो पहिले मोहल्ले वालों व पारिवारिक जनों को दिखाया जाता है जिससे समाज में होड़ाहोड़ फैलती है और एक विषम समस्या खड़ी हो जाती है। बहुत सी रूढ़ियां ऐसी हैं जिनके पीछे न कोई भूमिका है और न कोई प्रयोजन; फिर भी महिलाएं उनमें विशेष रुचि रखती हैं और उन्हें आगे बढ़ कर अपनाती हैं। आज की शिक्षित कही जाने वाली नारियां ऐसी रूढ़ियों से अधिक सावधान रहें।

मजदूरों व कर्मचारियों में

सत्याचरण ही सर्वोत्तम उपासना

युग और परिस्थितियों के साथ जीवन के मूल्य बदलते रहे हैं। सत्य ही एक ऐसा तत्त्व है जो त्रैकालिक महत्त्व रखता है। अहिंसा के स्थान पर हिंसा को जीवन का सिद्धान्त बना कर चलने वाले और त्याग के बदले भोग को महत्त्व देने वाले वाद व विचार संसार में आए एवं गए हैं. परन्तु असत्य को जीवन का सिद्धान्त मानने वाला कोई भी वाद व विचार अब तक सामने नहीं आया है। भविष्य में भी नहीं आएगा ऐसा विश्वास किया जा सकता है। सत्य समाज-व्यवस्था का मेरुदंड है और सत्य ही समाज का सर्वोत्तम आधार है। जीवन व्यवहार में उसे अपनाए बिना समाज जैसी कोई इकाई बन ही नहीं सकती। आज सत्य के अभाव में ही नाना भ्रष्टाचारों के रूप में नाना दुरवस्थाएं पनप रही हैं।

भारतीय संस्कृति में 'सत्यमेव जयते' 'सत्यमेव भवतु' यही जीवन शुद्धि के आदि मंत्र रहे हैं। महाभारत में एक वर्णन है—जाजलि वणिक् व्यवसाय करते हुए भी सत्य की उपासना करता। कभी भी झूठ तोल माप नहीं करता। इस सत्याचरण से उसे तत्त्वज्ञान मिला। उसकी दुकान ही उसके कल्याण के लिए तपोवन सिद्ध हुई। आज के व्यापारी व कर्मचारी यदि उसी प्रकार के सत्याचरण करने लगें तो सहज ही धर्म, अर्थ व काम तीनों ही सध जाते हैं।

(स्टेट बैंक आफ इण्डिया (नई दिल्ली) में कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

[illegible]

[illegible]

आज प्रत्येक नागरिक का चाहे वह युवक हो या वृद्ध यह [illegible] कर्तव्य है कि इस अमानवीय प्रथा का बहिष्कार करे। विद्यार्थियों का दायित्व इस विषय में और भी बढ़ जाता है। क्योंकि उन्हें ही नई सृष्टि का निर्माण करना है। यदि वे अपने जीवन की साथिन [illegible] और [illegible] के आधार पर चुनेंगे तो उनके भविष्य के लिए इससे बढ़ कर कोई भूल नहीं होगी।

शिक्षित नारी रूढ़ियों से दूर रहें

घर में कुछ दहेज या चूछक आता है या अपनी लड़की को दिया जाता है तो पहिले मोहल्ले वालों व पारिवारिक जनों को दिखाया जाता है जिससे समाज में होड़ाहोड़ फैलती है और एक विषम समस्या खड़ी हो जाती है। बहुत सी रूढ़ियां ऐसी हैं जिनके पीछे न कोई भूमिका है और न कोई प्रयोजन; फिर भी महिलाएं उनमें विशेष रुचि रखती हैं और उन्हें आगे बढ़ कर अपनाती हैं। आज की शिक्षित कही जाने वाली नारियां ऐसी रूढ़ियों से अधिक सावधान रहें।

मजदूरों व कर्मचारियों में

सत्याचरण ही सर्वोत्तम उपासना

युग और परिस्थितियों के साथ जीवन के मूल्य बदलते रहे हैं। सत्य ही एक ऐसा तत्त्व है जो त्रैकालिक महत्त्व रखता है। अहिंसा के स्थान पर हिंसा को जीवन का सिद्धान्त बना कर चलने वाले और त्याग के बदले भोग को महत्त्व देने वाले वाद व विचार संसार में आए एवं गए हैं, पर असत्य को जीवन का सिद्धान्त मानने वाला कोई भी वाद व विचार अब तक सामने नहीं आया है। भविष्य में भी नहीं आएगा, ऐसा विश्वास किया जा सकता है। सत्य समाज-व्यवस्था का मेरुदंड है और सत्य ही समाज का सर्वोत्तम आधार है। जीवन व्यवहार में इसे अपनाए बिना समाज जैसी कोई इकाई सध ही नहीं सकती। आज सत्य के अभाव में ही नाना भ्रष्टाचारों के रूप में नाना दुरवस्थाएं पनप रही हैं।

भारतीय संस्कृति में 'सत्यमेव जयते' 'सच्चं खु भयवं' यही जीवन शुद्धि के आदि मंत्र रहे हैं। महाभारत में एक वर्णन है—जाजलि वणिक् व्यवसाय करते हुए भी सत्य की उपासना करता। कभी वह झूठ तोल माप नहीं करता। उस सत्याचरण से उसे ब्रह्मज्ञान मिला। उसकी दुकान ही उसके कल्याण के लिए तपोवन सिद्ध हुई। आज के व्यापारी व कर्मचारी यदि इसी प्रकार के सत्याचरण करने लगें तो सहज ही धर्म, अर्थ व काम तीनों ही सध जाते हैं।

(स्टेट बैंक आफ इण्डिया (नई दिल्ली) में कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

मजदूर वर्ग चरित्रवान् बने

आजकल का मजदूर वर्ग, सत्ता और अधिकारों के संघर्ष में लगा हुआ है परन्तु मजदूरों को सर्वप्रथम संघर्ष अपने जीवन की अनैतिकताओं और दुष्प्रवृत्तियों से करना है। जीवन का मूलाधार चरित्र है। अगर मजदूर वर्ग चरित्रवान् नहीं हुआ तो वह न तो प्राप्त अधिकारों का सदुपयोग ही कर सकेगा और न उन्हें स्थायी ही रख सकेगा। श्रमिक वर्ग के सभी हितैपियों का यह कर्त्तव्य है कि वे उन्हें जीवन सुधार के लिए प्रेरित करें। इस के विपरीत जो लोग उनको हिंसात्मक कार्यवाहियों की ओर प्रेरित करते हैं, वे उन्हें गुमराह करते हैं।

(दिल्ली में मजदूरों की सभा में दिए गए भाषण से)

मजदूर प्रान्तीयता को न उभारें

मजदूर वर्ग एक सुसंगठित वर्ग है। वह अपनी उन्नति, व अधिकारों के लिए भी कटिबद्ध है, पर उन्हें विवेक से आगे बढ़ना है। संगठन का अर्थ किसी दूसरे वर्ग को परास्त करना नहीं होता। किसी भी दूसरे वर्ग के उचित हितों में बाधा पहुंचाए बिना जो प्रगति होती है वही वास्तविक प्रगति है। भावुकता और आवेश के साथ उचित अनुचित किसी भी स्थिति पर बड़े बड़े प्रदर्शन कर डालना भी कोई बड़ी बात नहीं होती। उन्हें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई उन्हे उकसा कर उनकी भावुकता से नाजायज फायदा तो नहीं उठा रहा है। प्रान्तीय भावनाओं में आवश्यकता से अधिक रस लेना भी कभी कभी देश के लिए भयंकर स्थिति पैदा कर देता है। मजदूर बन्धुओं को यह ध्यान रख कर चलना है कि हिंसा व तोड़फोड़ के तरीकों से किसी भी समस्या के हल करने का प्रयत्न घोर अनैतिकता है। जनतंत्र में ऐसी प्रवृत्तियों की आवश्यकता नहीं रह जाती।

(मलाड (बम्बई) में मजदूरों की सभा में दिए गए भाषण से)

मजदूरों व कर्मचारियों में

कर्मचारी वर्ग उत्तेजना और आवेश से काम न ले

आज जागृति का युग है। पूर्व के क्षितिज से लेकर पश्चिम के क्षितिज तक मजदूर, किसान, कर्मचारी आदि हर वर्ग में महत्वाकांक्षा व चेतना जागृत हुई है। हर एक वर्ग अपने ही पैरों पर खड़ा होना चाहता है, यह जनतांत्रिक युग की उल्लेखनीय देन है। पश्चिम के कुछ देशों में अधिकारों के संघर्ष में रक्तक्रान्तियां हो चुकी हैं, पर यह भारतवर्ष ऋषि, महर्षि व श्रमण, निर्ग्रन्थों की तपोभूमि है। अहिंसा व न्याय इस भूमि के सहज फल हैं। भारतवर्ष के कर्मचारी व मजदूरों ने अब तक शान्ति पूर्ण तरीकों से काम लेकर एक सुन्दर इतिहास गढ़ा है। आज भी उनके सामने अनेकों समस्याएं हैं; जिनके लिए कि वे प्रतिक्षण संघर्षशील हैं। पर इस संघर्ष में अहिंसा की मर्यादा का अतिक्रमण उचित नहीं होता। यह सच है कि जब तक बच्चा जोर से नहीं चिल्लाता तब तक माता स्तन पान कराने की नहीं सोचा करती। मजदूरों और कर्मचारियों में बहुत बार ऐसा ही होता है। सौ सौ बार चिल्लाने पर भी उनकी कोई नहीं सुनता। फिर भी यथार्थ यही है कि कैसी भी समस्या सामने क्यों न हो, मजदूर व कर्मचारी उत्तेजना व आवेश से काम न लें।

स्पष्ट है कि बिजली, पानी, डाक, तार आदि जिन लोगों के हाथ में हैं वे एक छोटी सी हड़ताल में अपनी सब मांगें भर सकते हैं। पर इस अन्तिम अस्त्र को हठात् काम में लाना सुन्दर नहीं हुआ करता। महात्मा गांधी ने कहा था—स्वराज्य मुझे दस वर्ष बाद ही क्यों न मिले पर हिंसा से मिलने वाला स्वराज्य मैं कभी नहीं लूंगा। मजदूर व कर्मचारी भी अहिंसा के मार्ग पर चलें। कर्मचारी बन्धुओं को हम केवल ही अहिंसा व शान्ति की बात नहीं कहते हैं किन्तु शासकों व उद्योगपतियों से भी न्याय, प्रेम व सौजन्य की राह पर चलने की शपथ लेते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन समाज में समन्वय व सन्तुलन का उद्देश्य लेकर चलता है, इसलिए उनसे कहते

मजदूर वर्ग चरित्रवान् बने

आजकल का मजदूर वर्ग, सत्ता और अधिकारों के संघर्ष में लगा हुआ है परन्तु मजदूरों को सर्वप्रथम संघर्ष अपने जीवन की अनैतिकताओं और दुष्प्रवृत्तियों से करना है। जीवन का मूलाधार चरित्र है। अगर मजदूर वर्ग चरित्रवान् नहीं हुआ तो वह न तो प्राप्त अधिकारों का सदुपयोग ही कर सकेगा और न उन्हें स्थायी ही रख सकेगा। श्रमिक वर्ग के सभी हितैषियों का यह कर्त्तव्य है कि वे उन्हें जीवन सुधार के लिए प्रेरित करें। इस के विपरीत जो लोग उनको हिंसात्मक कार्यवाहियों की ओर प्रेरित करते हैं, वे उन्हें गुमराह करते हैं।

(दिल्ली में मजदूरों की सभा में दिए गए भाषण से)

मजदूर प्रान्तीयता को न उभारें

मजदूर वर्ग एक सुसंगठित वर्ग है। वह अपनी उन्नति, व अधिकारों के लिए भी कटिबद्ध है, पर उन्हें विवेक से आगे बढ़ना है। संगठन का अर्थ किसी दूसरे वर्ग को परास्त करना नहीं होता। किसी भी दूसरे वर्ग के उचित हितों में बाधा पहुंचाए बिना जो प्रगति होती है वही वास्तविक प्रगति है। भावुकता और आवेश के साथ उचित अनुचित किसी भी स्थिति पर बड़े बड़े प्रदर्शन कर डालना भी कोई बड़ी बात नहीं होती। उन्हें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई उन्हे उकसा कर उनकी भावुकता से नाजायज फ़ायदा तो नहीं उठा रहा है। प्रान्तीय भावनाओं में आवश्यकता से अधिक रस लेना भी कभी कभी देश के लिए भयंकर स्थिति पैदा कर देता है। मजदूर बन्धुओं को यह ध्यान रख कर चलना है कि हिंसा व तोड़फोड़ के तरीकों से किसी भी समस्या के हल करने का प्रयत्न घोर अनैतिकता है। जनतंत्र में ऐसी प्रवृत्तियों की आवश्यकता नहीं रह जाती।

(मलाड (बम्बई) में मजदूरों की सभा में दिए गए भाषण से)

कर्मचारी वर्ग उत्तेजना और आवेश से काम न ले

आज जागृति का युग है। पूर्व के क्षितिज से लेकर पश्चिम के क्षितिज तक मजदूर, किसान, कर्मचारी आदि हर वर्ग में महत्वाकांक्षा व चेतना जागृत हुई है। हर एक वर्ग अपने ही पैरों पर खड़ा होना चाहता है, यह जनतांत्रिक युग की उल्लेखनीय देन है। पश्चिम के कुछ देशों में अधिकारों के संघर्ष में रक्तक्रान्तियां हो चुकी हैं, पर यह भारतवर्ष ऋषि, महर्षि व श्रमण, निर्ग्रन्थों की तपोभूमि है। अहिंसा व न्याय इस भूमि के सहज फल हैं। भारतवर्ष के कर्मचारी व मजदूरों ने अब तक शान्ति पूर्ण तरीकों से काम लेकर एक सुन्दर इतिहास गढ़ा है। आज भी उनके सामने अनेकों समस्याएं हैं; जिनके लिए कि वे प्रतिक्षण संघर्षशील हैं। पर इस संघर्ष में अहिंसा की मर्यादा का अतिक्रमण उचित नहीं होगा। यह सच है कि जब तक बच्चा जोर से नहीं चिल्लाता तब तक माता स्तन पान कराने की नहीं सोचा करती। मजदूरों और कर्मचारियों में बहुत बार ऐसा ही होता है। सौ सौ बार चिल्लाने पर भी उनकी कोई नहीं सुनता। फिर भी यथार्थ यही है कि कैसी भी समस्या सामने क्यों न हो, मजदूर व कर्मचारी उत्तेजना व आवेश से काम न लें।

स्पष्ट है कि बिजली, पानी, डाक, तार आदि जिन लोगों के हाथ में हैं वे एक छोटी सी हड़ताल में अपनी सब मांगे भर सकते हैं। पर इस अन्तिम अस्त्र को हठात् काम में लाना सुन्दर नहीं हुआ करता। महात्मा गांधी ने कहा था—स्वराज्य मुझे दस वर्ष बाद ही क्यों न मिले पर हिंसा से मिलने वाला स्वराज्य मैं कभी नहीं लूंगा। मजदूर व कर्मचारी भी अहिंसा के मार्ग पर चलें। कर्मचारी बन्धुओं को हम केवल हो अहिंसा व शान्ति की बात नहीं कहते हैं किन्तु शासकों व उद्योगपतियों से भी न्याय, प्रेम व सौजन्य की राह पर चलने की शपथ लेते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन समाज में समन्वय व सन्तुलन का उद्देश्य लेकर चलता है, इसलिए उनसे कहने

की बातें उनसे कहेंगे और आपसे कहने की बातें आपसे कहेंगे। यह लाभप्रद नहीं होगा कि मजदूरों व कर्मचारियों के सामने शासकों व उद्योगपतियों की त्रुटियों पर कहा जाए और शासकों व उद्योगपतियों के सामने मजदूरों की त्रुटियों पर।

(दिल्ली में बिजली बोर्ड के मजदूरों के बीच दिए गए भाषण से)

कर्मचारी काम चोर न बनें

रिश्वत लेने वाले दामचोर हैं और काम से जी चुराने वाले कामचोर। देखा जाता है कर्मचारी थोड़े कामों में बहुत सारा समय पूरा करना चाहते हैं, पर थोड़े समय में बहुत सारे काम पूरा करना नहीं चाहते। कभी कभी वे इस मनोवृत्ति से काम को बचा लेते हैं कि मैनेजर बचे काम को अतिरिक्त समय में कराएगा और हमें अतिरिक्त द्रव्य लाभ होगा। ऐसे लोग कर्मचारी कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। वे तो केवल द्रव्यचारी हैं।

(नई दिल्ली में स्टेट बैंक आफ इंडिया के कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

सामयिक घटनाओं पर

जीवन सादा और विचार ऊंचे हों

बड़े लोगों का जीवन सादा हो यह बात आज जोरों से उठी है। बड़े लोगों में व्यापारी हैं, जिनकी बड़ी तोंद नये करों ने बहुत कुछ सुला दी है। बड़े लोगों में राज्य व केन्द्र के मन्त्री जन हैं, जो आज जनता के मुंह पर चढ़ ही गए हैं। बड़े लोगों में ऊंची तनख्वाह वाले राजकर्मचारी हैं, वे सादा जीवन बिताने की अपील दूसरों से ही नहीं करते, इसलिए स्वयं भी अब तक बचे हुए हैं। कुछ भी हो सामूहिक रूप से सभी वर्गों में सादापन आए बिना समस्या हल नहीं हो सकती। घर में बच्चे भूखे रहें और माता-पिता अपनी शान के लिये कार खरीदें; यह कैसी शान? ठीक वैसे ही गरीब देश में बड़े लोग ऊंचे रहन सहन को अपनी शान समझें, यह शोभास्पद नहीं है। ऊंचे तो व्यक्ति के विचार व कार्य हों। जीवन तो सदा ही सादा हो यह एक शाश्वत तथ्य है। सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामंत्री चाणक्य उसी अपने छोटे आश्रम में रह कर राज्य कार्य सम्भाला करते थे जहां वे पूर्व जीवन में विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। प्राचीन मुद्रा राक्षस नामक संस्कृत नाटक में उनके सादे जीवन के बारे में लिखा है—

उपल सकल मेतद् भेदकं गोमयानां। बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम अेष ॥
दारणमपि समिद्भि : शुष्यमाणाभि राभि
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकु आम् ॥

'कण्डे तोड़ने के लिए एक छोटा सा पत्थर व विद्यार्थियों द्वारा एकत्रित ईंधन राशि ही उनका सब कुछ है।' झुके हुए छज्जे व टूटी फूटी दीवार वाला उनका घर है। आज उस आदर्श को चरितार्थ करने वाला

की बातें उनसे कहेंगे और आपसे कहने की बातें आपसे कहेंगे। यह लाभप्रद नहीं होगा कि मजदूरों व कर्मचारियों के सामने शासकों व उद्योगपतियों की त्रुटियों पर कहा जाए और शासकों व उद्योगपतियों के सामने मजदूरों की त्रुटियों पर।

(दिल्ली में बिजली बोर्ड के मजदूरों के बीच दिए गए भाषण से)

कर्मचारी काम चोर न बनें

रिश्वत लेने वाले दामचोर हैं और काम से जी चुराने वाले कामचोर। देखा जाता है कर्मचारी थोड़े कामों में बहुत सारा समय पूरा करना चाहते हैं, पर थोड़े समय में बहुत सारे काम पूरा करना नहीं चाहते। कभी कभी वे इस मनोवृत्ति से काम को बचा लेते हैं कि मैनेजर बचे काम को अतिरिक्त समय में कराएगा और हमें अतिरिक्त द्रव्य लाभ होगा। ऐसे लोग कर्मचारी कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। वे तो केवल द्रव्यचारी हैं।

(नई दिल्ली में स्टेट बैंक आफ इंडिया के कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

सामयिक घटनाओं पर

जीवन सादा और विचार ऊंचे हों

बड़े लोगों का जीवन सादा हो यह बात आज जोरों से उठी है। बड़े लोगों में व्यापारी हैं, जिनकी बड़ी तोंद नये करों ने बहुत कुछ सुला दी है। बड़े लोगों में राज्य व केन्द्र के मन्त्री जन हैं, जो आज जनता के मुंह पर चढ़ ही गए हैं। बड़े लोगों में ऊंची तनख्वाह वाले राजकर्मचारी हैं, वे सादा जीवन बिताने की अपील दूसरों से ही नहीं करते, इसलिए स्वयं भी अब तक बचे हुए हैं। कुछ भी हो सामूहिक रूप से सभी वर्गों में सादापन आए बिना समस्या हल नहीं हो सकती। घर में बच्चे भूखे रहें और माता-पिता अपनी शान के लिये कार खरीदें; यह कैसी शान? ठीक वैसे ही गरीब देश में बड़े लोग ऊंचे रहन सहन को अपनी शान समझें, यह शोभास्पद नहीं है। ऊंचे तो व्यक्ति के विचार व कार्य हों। जीवन तो सदा ही सादा हो यह एक शाश्वत तथ्य है। सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामंत्री चाणक्य उसी अपने छोटे आश्रम में रह कर राज्य कार्य सम्भाला करते थे जहां वे पूर्व जीवन में विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। प्राचीन मुद्रा राक्षस नामक संस्कृत नाटक में उनके सादे जीवन के बारे में लिखा है—

उपल सकल मेतद् भेदकं गोमयानां। बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एष ॥
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभि राभि
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ॥

'कण्डे तोड़ने के लिए एक छोटा सा पत्थर व विद्यार्थियों द्वारा एकत्रित ईंधन राशि ही उनका सब कुछ है।' झुके हुए छज्जे व टूटी फूटी दीवार वाला उनका घर है। आज उस आदर्श को चरितार्थ करने वाला

एक भी मंत्री नहीं दीखता। गांधीजी आश्रमों में रहा करते थे किन्तु आज तो वे सब खाली पड़े हैं। आज आवश्यकता है कि त्याग भावना से कुछ लोग ऐसा उदाहरण जनता के सामने रखें। विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि उन वातानुकूलित कोठियों को छोड़ देने से आराम घट सकता है पर मंत्रियों की शान नहीं घटेगी प्रत्युत उनकी शान में और चार चांद लगेंगे।

(मितव्ययिता आन्दोलन के प्रसंग पर)

शान्ति, प्रेम व न्याय में ही सामाजिक सन्तुलन

आए दिन हड़तालों का होना एकमात्र सामाजिक असन्तुलन का ही द्योतक है। हड़ताल आज देश के लिए एक ज्वलन्त समस्या बन गई है। पर एकाएक यह कह देना अविचार होगा कि हड़ताल करने वाले ही दोषी हैं या जिनके प्रति की जाती है, वे दोषी हैं। कुछ हड़तालें तो मात्र पक्ष के औचित्य की घोर अवहेलना कर शासक पक्ष स्वयं खड़ा कर लेता है। अपना वादा, अपना न्याय शासक वर्ग नहीं निभाता। अपने शासकीय सामर्थ्य का उपयोग करता है। इसी का प्रतिक्रियात्मक परिणाम वह हड़ताल होती है। कुछ हड़तालें वर्गीय संगठन के बल पर अनुचित लाभ उठाने की भूमि पर हो जाया करती हैं। हड़ताल आज एक ऐसा अस्त्र बन गया है जिससे अनुचित से अनुचित मांग भी अपने वर्गीय प्रभाव से शासकीय व सामाजिक व्यवस्थाओं को असन्तुलित कर मनाई जा सकती है पर वह न्याय नहीं है, संगठन शक्ति का दुरुपयोग है और इस बात का प्रतीक है कि अमुक वर्ग अपने तुच्छ स्वार्थों के लिये जन जीवन के साथ कितना खिलवाड़ कर रहा है। भूख हड़ताल तो दुष्प्रयुक्त हो कर और भी भयंकर अस्त्र बन जाती है। आजकल लोगों ने अन्तिम अस्त्र को

प्रथम अस्त्र बनाना प्रारम्भ कर दिया है। विचार-विनिमय, बीच-बचाव व न्यायालय की सीढ़ियों को पार किए बिना ही लोग व्यापक हड़ताल व भूख हड़ताल का ब्रह्मास्त्र छोड़ देते हैं और एक बार के लिए सारे देश को हिला देते हैं। यह जनतांत्रिक स्वतन्त्रता का दुराचरण है। अस्तु-यह एक निर्विवाद तथ्य है—पक्ष व प्रतिपक्ष के दुराग्रह व दुरहम् में क्षोभ व असन्तुलन है और शान्ति, प्रेम व न्याय में सामाजिक सन्तुलन है। पक्ष व प्रतिपक्ष दोनों ही आत्मावलोकन कर अपने आपको सम्भालते रहें तो आए दिन हड़ताल आदि के विक्षोभ पैदा ही न हों।

(सन् १९५७ अन्तर्प्रान्तीय बिक्री-कर के सम्बन्ध में व्यापारियों द्वारा दिल्ली में की गई हड़ताल व संभावित डाक कर्मचारियों की हड़ताल के प्रसंग पर)।

राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने में अहिंसा की उपेक्षा न हो

भारतवर्ष सदा से अहिंसा के प्रतिष्ठान का केन्द्र रहा है। भगवान् श्री महावीर और गौतम बुद्ध जैसे मनीषी समय समय पर यहां के जन-मानस को अहिंसा से परिपोषित करते रहे हैं। महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शन में यहां चालीस करोड़ जनता ने अहिंसा के मोर्चे पर खड़े रह कर स्वराज्य प्राप्त किया है। यहां के निवासी आज भी अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में बड़ी से बड़ी समस्याओं को अहिंसात्मक विधि से सुलझाने की सलाह देते हैं। पर देश के अन्तरङ्ग वातावरण में छोटी से छोटी समस्याओं को सुलझाने में भी जो अहिंसा की उपेक्षा हो रही है वह किसी भी विचारक के लिये अत्यन्त खेद का विषय है। 'ईंट का जवाब पत्थर' भी जहां अनादर्श रहा है वहां पत्थर का जवाब गोलियों से दिया जाने लगा

एक भी मंत्री नहीं दीखता। गांधीजी आश्रमों में रहा करते थे किन्तु आज तो वे सब खाली पड़े हैं। आज आवश्यकता है कि त्याग भावना से कुछ लोग ऐसा उदाहरण जनता के सामने रखें। विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि उन वातानुकूलित कोठियों को छोड़ देने से आराम घट सकता है पर मंत्रियों की शान नहीं घटेगी प्रत्युत उनकी शान में और चार चांद लगेंगे।

(मितव्ययिता आन्दोलन के प्रसंग पर)

शान्ति, प्रेम व न्याय में ही सामाजिक सन्तुलन

आए दिन हड़तालों का होना एकमात्र सामाजिक असन्तुलन का ही द्योतक है। हड़ताल आज देश के लिए एक ज्वलन्त समस्या बन गई है। पर एकाएक यह कह देना अविचार होगा कि हड़ताल करने वाले ही दोषी हैं या जिनके प्रति की जाती है, वे दोषी हैं। कुछ हड़तालें तो मात्र पक्ष के औचित्य की घोर अवहेलना कर शासक पक्ष स्वयं खड़ा कर लेता है। अपना वादा, अपना न्याय शासक वर्ग नहीं निभाता। अपने शासकीय सामर्थ्य का उपयोग करता है। इसी का प्रतिक्रियात्मक परिणाम वह हड़ताल होती है। कुछ हड़तालें वर्गीय संगठन के बल पर अनुचित लाभ उठाने की भूमि पर हो जाया करती हैं। हड़ताल आज एक ऐसा अस्त्र बन गया है जिससे अनुचित से अनुचित मांग भी अपने वर्गीय प्रभाव से शासकीय व सामाजिक व्यवस्थाओं को असन्तुलित कर मनाई जा सकती है पर वह न्याय नहीं है, संगठन शक्ति का दुरुपयोग है और इस बात का प्रतीक है कि अमुक वर्ग अपने तुच्छ स्वार्थों के लिये जन जीवन के साथ कितना खिलवाड़ कर रहा है। भूख हड़ताल तो दुष्प्रयुक्त हो कर और भी भयंकर अस्त्र बन जाती है। आजकल लोगों ने अन्तिम अस्त्र को

प्रथम अस्त्र बनाना प्रारम्भ कर दिया है। विचार-विनिमय, बीच-बचाव व न्यायालय की सीढ़ियों को पार किए बिना ही लोग व्यापक हड़ताल व भूख हड़ताल का ब्रह्मास्त्र छोड़ देते हैं और एक बार के लिए सारे देश को हिला देते हैं। यह जनतांत्रिक स्वतन्त्रता का दुराचरण है। अस्तु-यह एक निर्विवाद तथ्य है—पक्ष व प्रतिपक्ष के दुराग्रह व दुरहम् में क्षोभ व असन्तुलन है और शान्ति, प्रेम व न्याय में सामाजिक सन्तुलन है। पक्ष व प्रतिपक्ष दोनों ही आत्मावलोकन कर अपने आपको सम्भालते रहें तो आए दिन हड़ताल आदि के विक्षोभ पैदा ही न हों।

(सन् १९५७ अन्तर्प्रान्तीय बिक्री-कर के सम्बन्ध में व्यापारियों द्वारा दिल्ली में की गई हड़ताल व संभावित डाक कर्मचारियों की हड़ताल के प्रसंग पर)।

राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने में अहिंसा की उपेक्षा न हो

भारतवर्ष सदा से अहिंसा के प्रतिष्ठान का केन्द्र रहा है। भगवान् श्री महावीर और गौतम बुद्ध जैसे मनीषी समय समय पर यहां के जन-मानस को अहिंसा से परिपोषित करते रहे हैं। महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शन में यहां चालीस करोड़ जनता ने अहिंसा के मोर्चे पर खड़े रह कर स्वराज्य प्राप्त किया है। यहां के निवासी आज भी अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में बड़ी से बड़ी समस्याओं को अहिंसात्मक विधि से सुलझाने की सलाह देते हैं। पर देश के अन्तरङ्ग वातावरण में छोटी से छोटी समस्याओं को सुलझाने में भी जो अहिंसा की उपेक्षा हो रही है वह किसी भी विचारक के लिये अत्यन्त खेद का विषय है। 'ईंट का जवाब पत्थर' भी जहां अनादेश रहा है वहां पत्थर का जवाब गोलियों से दिया जाने लगा

हैं। जिस वाल्मीकि मन्दिर में रह कर महात्मा गांधी ने हरिजनों के प्रति देश के लोगों में [illegible] भाव पैदा किया और हर समस्या को शान्ति, प्रेम व त्याग से सुलझाने की सलाह दी, वही स्थान आज पुलिस की गोलियों से रक्त-रञ्जित हो, यह अत्यन्त लज्जास्पद है। इसका अर्थ यह नहीं कि दूसरा पक्ष सर्वथा निर्दोष था। हो सकता है कि पहल भी उसने की हो, पर पत्थर का जवाब गोली यह जरा भी संगत नहीं हो सकता।

आज देश में हड़तालों की बाढ़ सी आने लगी है और यही क्रम चालू रहा तो सम्भव है शीघ्र ही देश के बहुसंख्यक लोग यह आवाज उठा दें कि हड़ताल करना मात्र अवैध घोषित हो। विचारणीय यह है कि हड़ताल करके भी लोग अहिंसा की मर्यादा में नहीं रहते। उसी का परिणाम होता है आए दिन गोलियां चल जाती हैं; समस्यायें घुल जाती हैं। भारतवासी देश के नवनिर्माण में लगे हैं। उन्हें अहिंसा को भूलना नहीं चाहिए। राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में अहिंसा ही अमोघ अस्त्र है। अच्छा हो प्रत्येक नागरिक अणुव्रत-आन्दोलन के इस नियम का पालन करे—"मैं तोड़ फोड़ मूलक हिंसात्मक कार्यवाही में भाग नहीं लूंगा।"

(सन् १९५७, देहली हरिजन बस्ती में हुए गोलीकाण्ड के प्रसंग पर)

अणु-अस्त्रों के प्रयोगों की घुड़दौड़ बन्द हो

भौतिक विद्या-सिन्धु के मन्थन से अणुबम रूप जहर निकला है। अणु-अस्त्रों के परीक्षणों द्वारा समस्त वायुमण्डल को रेडियो क्रियात्मक कर मनुष्य मनुष्य को जहर पिला रहा है। प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार सागर-मन्थन से जो जहर निकला था उसे महादेव अकेले ही पी गए थे। आज इस अणुबम जहर को एक ही कोई मानव पीने वाला नहीं है।

न उस जहर का अब तक कोई उपचार ही निकला है। यह सब देखते हुए लगता है अणु-अस्त्रों के प्रयोगों की यह अन्तर्राष्ट्रीय घुड़दौड़ बन्द नहीं हुई तो मानव-जाति का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाएगा।

यह एक बहुत ही सामयिक प्रश्न है कि क्या किसी देश को यह अधिकार है कि वह सारे वायुमण्डल को विषाक्त कर दूसरे देशों के जन-जीवन को खतरे में डालता रहे? लगता है कि इस बात पर यदि तटस्थ चिन्तन हुआ तो अणु-अस्त्रों का परीक्षण करने वाले समस्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में अपराधी सिद्ध होंगे।

हर एक राष्ट्र यह कहता है—हम अपने संरक्षण के लिए केवल अपनी शक्ति अजमा रहे हैं, किसी देश पर आक्रमण करने के लिए नहीं। यदि यह ठीक है तो प्रत्येक राष्ट्र को यह शपथ लेनी चाहिए कि अणु-अस्त्रों के आक्रमण में हम पहल नहीं करेंगे। यदि सभी देश इसी प्रकार की शपथ ले लेते हैं तो सहज ही अणु-अस्त्रों के प्रलयंकारी युद्ध की आशंका मिट जाती है।

(ब्रिटेन, अमरीका व रूस द्वारा किए गए अणुअस्त्र-प्रयोगों के प्रसंग पर)

भाषा के लिए भ्रातृत्व को तिलाञ्जलि न दें

हिन्दी व गुरुमुखी भाषा को लेकर जो तनाव पैदा हुआ है और अब तक बढ़ता जा रहा है, यह देश की एकता के लिए बहुत अहितकर है। अब यह संघर्ष इस स्थिति तक पहुंच गया है कि भाषा के साथ साथ हिन्दुओं और सिक्खों के भ्रातृत्व को भी खतरा पैदा हो गया है। दोनों ही पक्षों को अब शान्ति, धैर्य व उदारता का परिचय देना चाहिए। भाषा के लिए वे भ्रातृत्व को तिलाञ्जलि न दें। भाषा की अपेक्षा भ्रातृत्व

है। जिस वाल्मीकि मन्दिर में रह कर महात्मा गांधी ने हरिजनों के प्रति देश के लोगों में सद्भाव पैदा किया और हर समस्या को शान्ति, प्रेम व न्याय से सुलझाने की सलाह दी, वही स्थान आज पुलिस की गोलियों से रक्त-रंजित हो, यह अत्यन्त लज्जास्पद है। इसका अर्थ यह नहीं कि दूसरा पक्ष सर्वथा निर्दोष था। हो सकता है कि पहल भी उसने की हो, पर पत्थर का जवाब गोली यह जरा भी संगत नहीं हो सकता।

आज देश में हड़तालों की बाढ़ सी आने लगी है और यही क्रम चालू रहा तो सम्भव है शीघ्र ही देश के बहुसंख्यक लोग यह आवाज उठा दें कि हड़ताल करना मात्र अवैध घोषित हो। विचारणीय यह है कि हड़ताल करके भी लोग अहिंसा की मर्यादा में नहीं रहते। उसी का परिणाम होता है आए दिन गोलियां चल जाती हैं; समस्यायें घुल जाती हैं। भारतवासी देश के नवनिर्माण में लगे हैं। उन्हें अहिंसा को भूलना नहीं चाहिए। राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में अहिंसा ही अमोघ अस्त्र है। अच्छा हो प्रत्येक नागरिक अणुव्रत-आन्दोलन के इस नियम का पालन करे—"मैं तोड़ फोड़ मूलक हिंसात्मक कार्यवाही में भाग नहीं लूंगा।"

(सन् १९५७, देहली हरिजन बस्ती में हुए गोलीकाण्ड के प्रसंग पर)

अणु-अस्त्रों के प्रयोगों की घुड़दौड़ बन्द हों

भौतिक विद्या-सिन्धु के मन्थन से अणुबम रूप जहर निकला है। अणु-अस्त्रों के परीक्षणों द्वारा समस्त वायुमण्डल को रेडियो क्रियात्मक कर मनुष्य मनुष्य को जहर पिला रहा है। प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार सागर–मन्थन से जो जहर निकला था उसे महादेव अकेले ही पी गए ... तो एक ही कोई मानव पीने वाला नहीं है।

न उस जहर का अब तक कोई उपचार ही निकला है। यह सब देखते हुए लगता है अणु-अस्त्रों के प्रयोगों की यह अन्तर्राष्ट्रीय घुड़दौड़ बन्द नहीं हुई तो मानव-जाति का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाएगा।

यह एक बहुत ही सामयिक प्रश्न है कि क्या किसी देश को यह अधिकार है कि वह सारे वायुमण्डल को विषाक्त कर दूसरे देशों के जन-जीवन को खतरे में डालता रहे? लगता है कि इस बात पर यदि तटस्थ चिन्तन हुआ तो अणु-अस्त्रों का परीक्षण करने वाले समस्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अपराधी सिद्ध होंगे।

हर एक राष्ट्र यह कहता है—हम अपने संरक्षण के लिए केवल अपनी शक्ति अजमा रहे हैं, किसी देश पर आक्रमण करने के लिए नहीं। यदि यह ठीक है तो प्रत्येक राष्ट्र को यह शपथ लेनी चाहिए कि अणु-अस्त्रों के आक्रमण में हम पहल नहीं करेंगे। यदि सभी देश इसी प्रकार की शपथ ले लेते हैं तो सहज ही अणु-अस्त्रों के प्रलयंकारी युद्ध की आशंका मिट जाती है।

(ब्रिटेन, अमरीका व रूस द्वारा किए गए अणुअस्त्र-प्रयोगों के प्रसंग पर)

भाषा के लिए भ्रातृत्व को तिलाञ्जलि न दें

हिन्दी व गुरुमुखी भाषा को लेकर जो तनाव पैदा हुआ है और अब तक बढ़ता जा रहा है, यह देश की एकता के लिए बहुत अहितकर है। अब यह संघर्ष इस स्थिति तक पहुंच गया है कि भाषा के साथ साथ हिन्दुओं और सिक्खों के भ्रातृत्व को भी खतरा पैदा हो गया है। दोनों ही पक्षों को अब शान्ति, धैर्य व उदारता का परिचय देना चाहिए। भाषा के लिए वे भ्रातृत्व को तिलाञ्जलि न दें। भाषा की अपेक्षा भ्रातृत्व

साधु बना सकता है, जबकि मजिस्ट्रेट इस दिशा में 'क' और 'ख' भी नहीं जानता। शराब पीने वाला मजिस्ट्रेट भी भारतीय-संस्कृति के पूज्य साधुजनों का नियंत्रक व परीक्षक हो यह उनके सम्मान के खिलाफ होगा।

(भारतीय लोक सभा में प्रस्तावित साधु रजिस्ट्रेशन बिल के प्रसंग पर)

दिल्ली नगर निगम के चुनाव

दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी है। यहां की प्रत्येक घटना देश के ३६ करोड़ आदमियों का ध्यान खींचती है। यहां के अच्छे या बुरे चुनाव-स्तर का प्रभाव भी सारे देश पर पड़ेगा। इसलिए जनता व सभी दलों के राजनैतिक नेता चुनावों का नैतिक-स्तर इतना ऊंचा बनाए रखें जो समस्त देशवासियों के लिये एक उदाहरण बन सके। आचार्य श्री तुलसी ने इस सम्बन्ध में निम्न व्रत देश के सामने रक्खे हैं।

उम्मीदवारों के लिए नियमः—

१—रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत प्राप्त नहीं करूंगा।

२—किसी दल या उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व अभद्र प्रचार नहीं करूंगा।

३—धमकी व अन्य हिंसात्मक उपाय से किसी को अपने पक्ष में मत दान के लिए प्रभावित नहीं करूंगा।

४—मत-गणना में पर्चियां हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

५—प्रतिपक्षी उम्मीदवार व उसके मतदाताओं को प्रलोभन व भय आदि से तथा शराब आदि पिला कर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

६—दूसरे उम्मीदवार या दल से धन प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार नहीं बनूंगा।

साधु बना सकता है, जबकि मजिस्ट्रेट इस दिशा में 'क' और 'ख' भी नहीं जानता। शराब पीने वाला मजिस्ट्रेट भी भारतीय-संस्कृति के पूज्य साधुजनों का नियंत्रक व परीक्षक हो यह उनके सम्मान के खिलाफ होगा।

(भारतीय लोक सभा में प्रस्तावित साधु रजिस्ट्रेशन बिल के प्रसंग पर)

दिल्ली नगर निगम के चुनाव

दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी है। यहां की प्रत्येक घटना देश के ३६ करोड़ आदमियों का ध्यान खींचती है। यहां के अच्छे या बुरे चुनाव-स्तर का प्रभाव भी सारे देश पर पड़ेगा। इसलिए जनता व सभी दलों के राजनैतिक नेता चुनावों का नैतिक-स्तर इतना ऊंचा बनाए रखें जो समस्त देशवासियों के लिये एक उदाहरण बन सके। आचार्य श्री तुलसी ने इस सम्बन्ध में निम्न व्रत देश के सामने रक्खे हैं।

उम्मीदवारों के लिए नियम:—

१—रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत प्राप्त नहीं करूंगा।

२—किसी दल या उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व अभद्र प्रचार नहीं करूंगा।

३—धमकी व अन्य हिंसात्मक उपाय से किसी को अपने पक्ष में मत दान के लिए प्रभावित नहीं करूंगा।

४—मत-गणना में पर्चियां हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

५—प्रतिपक्षी उम्मीदवार व उसके मतदाताओं को प्रलोभन व भय आदि से तथा शराब आदि पिला कर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

६—दूसरे उम्मीदवार या दल से धन प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार नहीं बनूंगा।

विभिन्न प्रसंगों पर

रिश्वत को तनख्वाह न माना जाए

लोग भ्रष्टाचार इसलिए करते हैं कि वे अपना दोष प्रकट नहीं होने देंगे। हो सकता है कि वे सुप्रीमकोर्ट तक भी अपना दोष प्रमाणित न होने दें पर उनके ध्यान में रहना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट से भी ऊपर एक कोर्ट और है जहां दोषी अपने आप को बचा नहीं सकता। उसे कुछ लोग भगवान् का दरबार कहते हैं और कुछ लोग कुदरत का। वास्तव में वह कर्म-फल भोग का न्यायालय है। जिसके अनुसार कृतकर्मों का फल मनुष्य भोगता है। अपने किए पापों का फल उसे भोगना ही पड़ता है।

बहुत सारे लोगों ने रिश्वत को अपनी तनख्वाह का अंग मान लिया है। तनख्वाह बहुत कम है रिश्वत न लें तो क्या करें? यह कथन परम अनैतिकता का सूचक है। क्या यह कभी उचित माना जा सकता है कि किसी की नौकरी न लगी तो वह डाका डाले? अवैध उपाय किसी भी स्थिति में वैध नहीं होते। ऐसे बहुत सारे वर्ग हैं जो अल्प वेतन की समस्या को वैध उपक्रमों से हल करते हैं। जनतन्त्र के युग में हर-एक वर्ग वैसा कर सकता है। यह तो जरा भी संगत नहीं है कि रिश्वत जैसे भ्रष्टाचार को तनख्वाह का अंग मान कर चलाया जाए।

(क्रिमिनल कोर्ट (दिल्ली) में दिए गए भाषण से)

भारतवर्ष पुनः ब्रह्मावर्त बने

स्वतन्त्र भारतवर्ष आज नाना वाद-प्रवादों व संस्कृतियों के चौराहे

पर है। उसे अपना मार्ग चुनना है। वह न तो प्रगति के नाम पर किसी देश का अन्धानुयायी ही हो सकता है और न वह संस्कृति के नाम पर रूढ़ियों व निर्जीव परम्पराओं में अन्धविश्वासी ही रह सकता है। हेय व उपादेय का प्रमाण प्राचीनता व नवीनता नहीं अपितु मनुष्य का जागरूक विवेक ही हुआ करता है। अनुकरण के लिए भारतवर्ष रूस व अमरीका की ओर ही न झांके, अपितु अपने ही अतीत के अध्यात्म पूर्ण इतिहास को पुनरुज्जीवित करे। स्मृतियों व संस्कृत काव्य-ग्रन्थों में भारतवर्ष व उसके कुरु, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों की अनवद्य संस्कृति व सदाचार सम्पद् का जो चित्रण किया गया है, वही आज भारतवर्ष के लिए अनुकरणीय है। महर्षि मनु ब्रह्मावर्त प्रदेश के विषय में मनुस्मृति में कहते हैं—दृशद्वती व सरस्वती इन दो नदियों के बीच का भू-खण्ड ब्रह्मावर्त कहलाता है। वहां के लोगों का परम्परागत जो आचार है वह विश्ववर्ती अन्य लोगों के सदाचार का मान-दण्ड है अर्थात् दूसरे देशों के लोग मानते हैं—दुराचार वह है जिसे ब्रह्मावर्त के लोग नहीं करते हैं। नव-निर्माण की दिशा में अग्रसर होने वाले भारतवर्ष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी सदाचार सम्पद् का विकास कर पुनः ब्रह्मावर्त बने।

(इलाहाबाद बैंक के उच्चाधिकारियों और कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

वैज्ञानिक राजनीति के औजार न बनें

आज प्रयोग व अनुसन्धान का युग है। वह देश अपने आपको समृद्धिशाली मानता है जिसमें अधिकाधिक वैज्ञानिक और अनुसन्धानशालाएं हों। मानव जाति का भविष्य आज वैज्ञानिकों के हाथ में है। वे चाहें तो उसे सुरक्षा के शिखर पर पहुंचा सकते हैं और वे चाहें तो उसे

विभिन्न प्रसंगों पर

रिश्वत को तनख्वाह न माना जाए

लोग भ्रष्टाचार इसलिए करते हैं कि वे अपना दोष प्रकट नहीं होने देंगे। हो सकता है कि वे सुप्रीमकोर्ट तक भी अपना दोष प्रमाणित न होनें दें पर उनके ध्यान में रहना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट से भी ऊपर एक कोर्ट और है जहां दोषी अपने आप को बचा नहीं सकता। उसे कुछ लोग भगवान् का दरबार कहते हैं और कुछ लोग कुदरत का। वास्तव में वह कर्म-फल भोग का न्यायालय है। जिसके अनुसार कृतकर्मों का फल मनुष्य भोगता है। अपने किए पापों का फल उसे भोगना ही पड़ता है।

बहुत सारे लोगों ने रिश्वत को अपनी तनख्वाह का अंग मान लिया है। तनख्वाह बहुत कम है रिश्वत न लें तो क्या करें? यह कथन परम अनैतिकता का सूचक है। क्या यह कभी उचित माना जा सकता है कि किसी की नौकरी न लगी तो वह डाका डाले? अवैध उपाय किसी भी स्थिति में वैध नहीं होते। ऐसे बहुत सारे वर्ग हैं जो अल्प वेतन की समस्या को वैध उपक्रमों से हल करते हैं। जनतन्त्र के युग में हर-एक वर्ग वैसा कर सकता है। यह तो जरा भी संगत नहीं है कि रिश्वत जैसे भ्रष्टाचार को तनख्वाह का अंग मान कर चलाया जाए।

(क्रिमिनल कोर्ट (दिल्ली) में दिए गए भाषण से)

भारतवर्ष पुनः ब्रह्मावर्त बने

स्वतन्त्र भारतवर्ष आज नाना वाद-प्रवादों व संस्कृतियों के चौराहे

पर है। उसे अपना मार्ग चुनना है। वह न तो प्रगति के नाम पर किसी देश का अन्धानुयायी ही हो सकता है और न वह संस्कृति के नाम पर रूढ़ियों व निर्जीव परम्पराओं में अन्धःविश्वासी ही रह सकता है। हेय व उपादेय का प्रमाण प्राचीनता व नवीनता नहीं अपितु मनुष्य का जागरूक विवेक ही हुआ करता है। अनुकरण के लिए भारतवर्ष रूस व अमरीका की ओर ही न झांके, अपितु अपने ही अतीत के अध्यात्म पूर्ण इतिहास को पुनरुज्जीवित करे। स्मृतियों व संस्कृत काव्य-ग्रन्थों में भारतवर्ष व उसके कुरु, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों की अनवद्य संस्कृति व सदाचार सम्पद् का जो चित्रण किया गया है, वही आज भारतवर्ष के लिए अनुकरणीय है। महर्षि मनु ब्रह्मावर्त्त प्रदेश के विषय में मनु-स्मृति में कहते हैं—दृशद्वती व सरस्वती इन दो नदियों के बीच का भू-खण्ड ब्रह्मावर्त्त कहलाता है। वहां के लोगों का परम्परागत जो आचार है वह विश्ववर्ती अन्य लोगों के सदाचार का मान-दण्ड है अर्थात् दूसरे देशों के लोग मानते हैं—दुराचार वह है जिसे ब्रह्मावर्त्त के लोग नहीं करते हैं। नव-निर्माण की दिशा में अग्रसर होने वाले भारतवर्ष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी सदाचार सम्पद् का विकास कर पुनः ब्रह्मावर्त्त बने।

(इलाहाबाद बैंक के उच्चाधिकारियों और कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

वैज्ञानिक राजनीति के औजार न बनें

आज प्रयोग व अनुसन्धान का युग है। वह देश अपने आपको समृद्धिशाली मानता है जिसमें अधिकाधिक वैज्ञानिक और अनुसन्धान-शालाएं हों। मानव जाति का भविष्य आज वैज्ञानिकों के हाथ में है। वे चाहें तो उसे सुरक्षा के शिखर पर पहुंचा सकते हैं और वे चाहें तो उसे

विभिन्न प्रसंगों पर

रिश्वत को तनख्वाह न माना जाए

लोग भ्रष्टाचार इसलिए करते हैं कि वे अपना दोष प्रकट नहीं होने देंगे। हो सकता है कि वे सुप्रीमकोर्ट तक भी अपना दोष प्रमाणित न होनें दें पर उनके ध्यान में रहना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट से भी ऊपर एक कोर्ट और है जहां दोषी अपने आप को बचा नहीं सकता। उसे कुछ लोग भगवान् का दरबार कहते हैं और कुछ लोग कुदरत का। वास्तव में वह कर्म-फल भोग का न्यायालय है। जिसके अनुसार कृतकर्मों का फल मनुष्य भोगता है। अपने किए पापों का फल उसे भोगना ही पड़ता है।

बहुत सारे लोगों ने रिश्वत को अपनी तनख्वाह का अंग मान लिया है। तनख्वाह बहुत कम है रिश्वत न लें तो क्या करें? यह कथन परम अनैतिकता का सूचक है। क्या यह कभी उचित माना जा सकता है कि किसी की नौकरी न लगी तो वह डाका डाले? अवैध उपाय किसी भी स्थिति में वैध नहीं होते। ऐसे बहुत सारे वर्ग हैं जो अल्प वेतन की समस्या को वैध उपक्रमों से हल करते हैं। जनतन्त्र के युग में हर एक वर्ग वैसा कर सकता है। यह तो जरा भी संगत नहीं है कि रिश्वत जैसे भ्रष्टाचार को तनख्वाह का अंग मान कर चलाया जाए।

(क्रिमिनल कोर्ट (दिल्ली) में दिए गए भाषण से)

भारतवर्ष पुनः ब्रह्मावर्त बने

स्वतन्त्र भारतवर्ष आज नाना वाद-प्रवादों व संस्कृतियों के चौराहे

पर है। उसे अपना मार्ग चुनना है। वह न तो प्रगति के नाम पर किसी देश का अन्धानुयायी ही हो सकता है और न वह संस्कृति के नाम पर रूढ़ियों व निर्जीव परम्पराओं में अन्ध विश्वासी हो रह सकता है। हेय व उपादेय का प्रमाण प्राचीनता व नवीनता नहीं अपितु मनुष्य का जागरूक विवेक ही हुआ करता है। अनुकरण के लिए भारतवर्ष रूस व अमरीका की ओर ही न झांके, अपितु अपने ही अतीत के अध्यात्म पूर्ण इतिहास को पुनरुज्जीवित करे। स्मृतियों व संस्कृत काव्य-ग्रन्थों में भारतवर्ष व उसके कुरु, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों की अनवद्य संस्कृति व सदाचार सम्पद् का जो चित्रण किया गया है, वही आज भारतवर्ष के लिए अनुकरणीय है। महर्षि मनु ब्रह्मावर्त्त प्रदेश के विषय में मनु-स्मृति में कहते हैं—दृषद्वती व सरस्वती इन दो नदियों के बीच का भू-खण्ड ब्रह्मावर्त्त कहलाता है। वहां के लोगों का परम्परागत जो आचार है वह विश्ववर्ती अन्य लोगों के सदाचार का मान दण्ड है अर्थात् दूसरे देशों के लोग मानते हैं—दुराचार वह है जिसे ब्रह्मावर्त्त के लोग नहीं करते हैं। नव-निर्माण की दिशा में अग्रसर होने वाले भारतवर्ष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी सदाचार सम्पद् का विकास कर पुनः ब्रह्मावर्त्त बने।

(इलाहाबाद बैंक के उच्चाधिकारियों और कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

वैज्ञानिक राजनीति के औजार न बनें

आज प्रयोग व अनुसन्धान का युग है। वह देश अपने आपको समृद्धिशाली मानता है जिसमें अधिकाधिक वैज्ञानिक और अनुसन्धान-शालाएं हों। मानव जाति का भविष्य आज वैज्ञानिकों के हाथ में है। वे चाहें तो उसे सुरक्षा के शिखर पर पहुंचा सकते हैं और वे चाहें तो उसे

विभिन्न प्रसंगों पर

रिश्वत को तनख्वाह न माना जाए

लोग भ्रष्टाचार इसलिए करते हैं कि वे अपना दोष प्रकट नहीं होने देंगे। हो सकता है कि वे सुप्रीमकोर्ट तक भी अपना दोष प्रमाणित न होने दें पर उनके ध्यान में रहना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट से भी ऊपर एक कोर्ट और है जहां दोषी अपने आप को बचा नहीं सकता। उसे कुछ लोग भगवान् का दरबार कहते हैं और कुछ लोग कुदरत का। वास्तव में वह कर्म-फल भोग का न्यायालय है। जिसके अनुसार कृतकर्मों का फल मनुष्य भोगता है। अपने किए पापों का फल उसे भोगना ही पड़ता है।

बहुत सारे लोगों ने रिश्वत को अपनी तनख्वाह का अंग मान लिया है। तनख्वाह बहुत कम है रिश्वत न लें तो क्या करें? यह कथन परम अनैतिकता का सूचक है। क्या यह कभी उचित माना जा सकता है कि किसी की नौकरी न लगी तो वह डाका डाले? अवैध उपाय किसी भी स्थिति में वैध नहीं होते। ऐसे बहुत सारे वर्ग हैं जो अल्प वेतन की समस्या को वैध उपक्रमों से हल करते हैं। जनतन्त्र के युग में हर एक वर्ग वैसा कर सकता है। यह तो जरा भी संगत नहीं है कि रिश्वत जैसे भ्रष्टाचार को तनख्वाह का अंग मान कर चलाया जाए।

(क्रिमिनल कोर्ट (दिल्ली) में दिए गए भाषण से)

भारतवर्ष पुनः ब्रह्मावर्त बने

स्वतन्त्र भारतवर्ष आज नाना वाद-प्रवादों व संस्कृतियों के चौराहे

पर है। उसे अपना मार्ग चुनना है। वह न तो प्रगति के नाम पर किसी देश का अन्धानुयायी ही हो सकता है और न वह संस्कृति के नाम पर रूढ़ियों व निर्जीव परम्पराओं में अन्ध-विश्वासी ही रह सकता है। हेय व उपादेय का प्रमाण प्राचीनता व नवीनता नहीं अपितु मनुष्य का जागरूक विवेक ही हुआ करता है। अनुकरण के लिए भारतवर्ष रूस व अमरीका की ओर ही न झांके, अपितु अपने ही अतीत के अध्यात्म पूर्ण इतिहास को पुनरुज्जीवित करे। स्मृतियों व संस्कृत काव्य-ग्रन्थों में भारतवर्ष व उसके कुरु, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों की अनवद्य संस्कृति व सदाचार सम्पद् का जो चित्रण किया गया है, वही आज भारतवर्ष के लिए अनुकरणीय है। महर्षि मनु ब्रह्मावर्त्त प्रदेश के विषय में मनु-स्मृति में कहते हैं—दृशद्वती व सरस्वती इन दो नदियों के बीच का भू-खण्ड ब्रह्मावर्त्त कहलाता है। वहां के लोगों का परम्परागत जो आचार है वह विश्ववर्ती अन्य लोगों के सदाचार का मान दण्ड है अर्थात् दूसरे देशों के लोग मानते हैं—दुराचार वह है जिसे ब्रह्मावर्त्त के लोग नहीं करते हैं। नव-निर्माण की दिशा में अग्रसर होने वाले भारतवर्ष के लिए आवश्यक है कि, वह अपनी सदाचार सम्पद् का विकास कर पुनः ब्रह्मावर्त्त बने।

(इलाहाबाद बैंक के उच्चाधिकारियों और कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

वैज्ञानिक राजनीति के औजार न बनें

आज प्रयोग व अनुसन्धान का युग है। वह देश अपने आपको समृद्धिशाली मानता है जिसमें अधिकाधिक वैज्ञानिक और अनुसन्धान-शालाएं हों। मानव जाति का भविष्य आज वैज्ञानिकों के हाथ में है। वे चाहें तो उसे सुरक्षा के शिखर पर पहुंचा सकते हैं और वे चाहें तो उसे

बलवान् बनाने में लग रही है। आज वह जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के नाम पर भोग और ऐश्वर्य के असीम साधन जुटाने में लगा है। इस माने में उसने अभूतपूर्व उन्नति भी की है और करता भी जा रहा है। पर जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक व नैतिक पक्ष को गौण व उपेक्षित ही नहीं कर रहा है अपितु भुला भी रहा है। वह अब तक मानवता को ऊंचा नहीं उठा रहा है अपितु मानवता पर हावी होने वाले भोग परक तत्त्वों का ही संकलन कर रहा है। यह वास्तविकता की आज उसे चुनौती है। आध्यात्मिक उन्नति का अभाव समाज के सर्वांगीण विकास में पक्षाघात सिद्ध होगा।

विचारों का आस्तिक्य आचार में आए

दुःख जिहासा और सुख लिप्सा से भारतीय दर्शनों का उदय हुआ। परिणाम स्वरूप केवल लोकायतिक (नास्तिक) मत को छोड़कर जैन, बौद्ध और वैदिक आत्मा के आस्तिक्य पर एकमत हैं। केवल नास्तिक दर्शन ही इस विषय में अपनी भिन्न धारणा रखता है। फलतः आस्तिक दर्शनों ने दुःख जिहासा के लिए बताया—"धन मनुष्य का त्राण नहीं है।" "उदार चरित्र वालों के लिए विश्व ही कुटुम्ब है।" "कामार्थी पुरुष सोचता है, झूरता है, तप्त होता है, परितप्त होता है।" "भोग भुक्त नहीं हुए हम ही भुक्त हो गए।" इस प्रकार आस्तिक दर्शनों ने जहां त्याग और संयम की बात कही वहां नास्तिक दार्शनिकों ने कहा—"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।" आज की भारतीय जनता के विचारों में पूर्ण आस्तिकता है। अहिंसा, संयम, व त्याग उनके आदर्श हैं। पर आचार पक्ष में वह "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्" का ही अनुसरण करती है। आज के जन-जीवन में छाई हुई क्रूर अनैतिकताओं को देखते हुए यह सोचा ही नहीं जा सकता कि यह आस्तिक है।

बलवान् बनाने में लग रही है। आज वह जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के नाम पर भोग और ऐश्वर्य के असीम साधन जुटाने में लगा है। इस माने में उसने अभूतपूर्व उन्नति भी की है और करता भी जा रहा है। पर जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक व नैतिक पक्ष को गौण व उपेक्षित ही नहीं कर रहा है अपितु भुला भी रहा है। वह अब तक मानवता को ऊंचा नहीं उठा रहा है अपितु मानवता पर हावी होने वाले भोग परक तत्त्वों का ही संकलन कर रहा है। यह वास्तविकता की आज उसे चुनौती है। आध्यात्मिक उन्नति का अभाव समाज के सर्वांगीण विकास में पक्षाघात सिद्ध होगा।

विचारों का आस्तिक्य आचार में आए

दुःख जिहासा और सुख लिप्सा से भारतीय दर्शनों का उदय हुआ। परिणाम स्वरूप केवल लोकायतिक (नास्तिक) मत को छोड़कर जैन, बौद्ध और वैदिक आत्मा के आस्तिक्य पर एकमत हैं। केवल नास्तिक दर्शन ही इस विषय में अपनी भिन्न धारणा रखता है। फलतः आस्तिक दर्शनों ने दुःख जिहासा के लिए बताया—"धन मनुष्य का त्राण नहीं है।" "उदार चरित्र वालों के लिए विश्व ही कुटुम्ब है।" "कामार्थी पुरुष सोचता है, झूरता है, तप्त होता है, परितप्त होता है।" "भोग भुक्त नहीं हुए हम ही भुक्त हो गए।" इस प्रकार आस्तिक दर्शनों ने जहां त्याग और संयम की बात कही वहां नास्तिक दार्शनिकों ने कहा—"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।" आज की भारतीय जनता के विचारों में पूर्ण आस्तिकता है। अहिंसा, संयम, व त्याग उनके आदर्श हैं। पर आचार पक्ष में वह "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्" का ही अनुसरण करती है। आज के जन-जीवन में छाई हुई क्रूर अनैतिकताओं को देखते हुए यह सोचा ही नहीं जा सकता कि यह आस्तिक है।

आत्मवाद की ओर प्रेरित हुआ है। सचमुच यह पश्चिम पर पूर्व की और अणुवाद पर आत्मवाद की विजय है।

आज विज्ञान व राजनीति के गठबन्धन का युग है। सत्ता—प्रधान राजनीति विज्ञान को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का औजार बना चुकी है। जीवन का सम्बन्ध यदि राजनीति से हटकर दर्शन के साथ हुआ होता तो अवश्य ही विज्ञान आज की तरह मानव-जाति के लिए अभिशाप नहीं बनता।

(वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (नई दिल्ली) के अधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

सामाजिक असंरक्षण ही भ्रष्टाचार का कारण

आज की अर्थ-व्यवस्था शोषण व संग्रह—प्रधान है। इसमें हर एक व्यक्ति को मन चाहा धन एकत्रित करने की छूट है। समाज में व्यापक नैतिक-सुधार तब तक नहीं आ सकता, जब तक कि आज की अर्थ-व्यवस्था मूल से ही न बदल जाए। सुधार लाने की दशा में कानून हार खा गए। विज्ञान भी कोई ऐसा यंत्र नहीं दे सका जो बटन दबाते ही मनुष्य का हृदय बदल डाले। समझा बुझाकर हृदय परिवर्तन का एक मात्र साधन व्यापक सुधार लाने वाला है पर आज समाज-व्यवस्था की प्रतिकूलता में वह भी थोड़ा ही सफल रहा है। लोग कहते हैं कि धन-संग्रह के बिना समाज की बोझिल गाड़ी एक कदम भी आगे चल नहीं सकती। हम बुड्ढे हो गए या किसी आकस्मिक घटना से बेकार हो गए तो पूर्व संचित धन के अतिरिक्त हमारा संरक्षक व जिम्मेदार कौन है? ऐसी परिस्थिति में भिखमंगी के सिवाय है कोई और व्यवस्था समाज में? वे कहते हैं—शिक्षा, स्वास्थ्य, रोटी, मकान व प्रतिष्ठा आदि जीवन की सभी अनिवार्यताएं अर्थ-संचालित हैं। इसलिए एक

आत्मवाद की ओर प्रेरित हुआ है। सचमुच यह पश्चिम पर पूर्व की और अणुवाद पर आत्मवाद की विजय है।

आज विज्ञान व राजनीति के गठबन्धन का युग है। सत्ता—प्रधान राजनीति विज्ञान को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का औजार बना चुकी है। जीवन का सम्बन्ध यदि राजनीति से हटकर दर्शन के साथ हुआ होता तो अवश्य ही विज्ञान आज की तरह मानव-जाति के लिए अभिशाप नहीं बनता।

(वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (नई दिल्ली) के अधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

सामाजिक असंरक्षण ही भ्रष्टाचार का कारण

आज की अर्थ-व्यवस्था शोषण व संग्रह—प्रधान है। इसमें हर एक व्यक्ति को मन चाहा धन एकत्रित करने की छूट है। समाज में व्यापक नैतिक-सुधार तब तक नहीं आ सकता, जब तक कि आज की अर्थ-व्यवस्था मूल से ही न बदल जाए। सुधार लाने की दशा में कानून हार खा गए। विज्ञान भी कोई ऐसा यंत्र नहीं दे सका जो बटन दबाते ही मनुष्य का हृदय बदल डाले। समझा बुझाकर हृदय परिवर्तन का एक मात्र साधन व्यापक सुधार लाने वाला है पर आज समाज-व्यवस्था की प्रतिकूलता में वह भी थोड़ा ही सफल रहा है। लोग कहते हैं कि धन-संग्रह के बिना समाज की बोझिल गाड़ी एक कदम भी आगे चल नहीं सकती। हम बुड्ढे हो गए या किसी आकस्मिक घटना से बेकार हो गए तो पूर्व संचित धन के अतिरिक्त हमारा संरक्षक व जिम्मेदार कौन है? ऐसी परिस्थिति में भिखमंगी के सिवाय है कोई और व्यवस्था समाज में? वे कहते हैं—शिक्षा, स्वास्थ्य, रोटी, मकान व प्रतिष्ठा आदि जीवन की सभी अनिवार्यताएं अर्थ-संचालित हैं। इसलिए एक

सामाजिक प्राणी को धर्म-कर्म का [illegible] भी [illegible] ही पड़ता है। अतः—इन सब बातों का सामना नहीं किया जा सकता है कि [illegible] सामाजिक अवस्था [illegible] का प्रमुख कारण है।

([illegible] (दिल्ली) के वार्षिक समारोह पर दिए गए भाषण से)

दर्शन का फलित सत्य व अहिंसा : विज्ञान का फलित अणुबम व उदजनबम

दर्शन अन्ध—विश्वासों का पुलिन्दा नहीं है, जैसा कि कुछ लोग समझ बैठे हैं। वह तो यथार्थता तक पहुंचने के लिए एक तर्क सम्मत मार्ग है। यह भी समुचित नहीं है कि दर्शन उस विद्या का नाम है जिसमें केवल आत्मा सम्बन्धी विचार किया जाता है। भारतीय दार्शनिकों ने आत्मा व अणु दोनों पर समान रूप से विचार किया है। जड़ और चेतन दोनों उनके विषय रहे हैं।

आज परमाणुवाद का युग है। परमाणु के विषय में अप्रत्याशित खोजें हो चली हैं, पर यह जानकर बहुतों को आश्चर्य होगा कि आज की नवीनतम खोजें सहस्रों वर्ष पूर्व के दार्शनिक युग को प्रकाश में लाने वाली सिद्ध हो रही हैं। जैन व वैशेषिक दर्शन में परमाणु पर पर्याप्त विचार किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः" परमाणु पदार्थ मात्र का अन्त्य कारण, सूक्ष्म व नित्य है। वह अनन्त धर्मात्मक है। इसलिए स्वर्ण से रजत व अन्य किसी भी पदार्थ स्वरूप में परिणत हो सकता है। दार्शनिकों का यह अभिमत बहुत दिनों तक वैज्ञानिकों को मान्य नहीं हो सका। पर

आज नवीनतम विज्ञान का विद्यार्थी भी भली भांति जानता है—कोई भी मौलिक तत्त्व ऋणाणु व धनाणुओं के परिवर्तन से किसी भी स्वरूप में बदला जा सकता है। पारे को सोने में बदलने के प्रयोग तो प्रयोग-शालाओं में भी हो चुके हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थी भारतीय दर्शन के मनन में लग लें। वैसे दर्शन और विज्ञान में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही सत्य के पथिक हैं। अन्तर है तो केवल इतना ही है कि दर्शन का फलित; सत्य व अहिंसा है और विज्ञान का फलित; अणुबम और उदजनबम।

(हिन्दू कालेज (दिल्ली) के छात्र व छात्राओं के बीच दिए गए भाषण से)

मानवता में चार चांद

विज्ञान का युग है। रूस के वैज्ञानिकों ने दो चांद आकाश में लगा दिए हैं। सम्भव है शीघ्र ही वे चार चांद भी लगा देंगे। विज्ञान के इति-हास में यह एक नया पृष्ठ जुड़ा है। पर एक ओर मनुष्य भौतिक उन्नति के शिखर पर पैर जमा रहा है और दूसरी ओर स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों से पराभूत होकर मानवता को ही····तिलाञ्जलि दे रहा है। भाई भाई के बीच झगड़ा है और देश देश के बीच शीत-युद्ध चल रहा है। छोटे छोटे स्वार्थों को लेकर देशीय और अन्तर्देशीय समस्याएं उभर आती हैं। लगता है मनुष्य प्रकाश से तम की ओर जा रहा है, सद् से असद् की ओर जा रहा है और अमृत से मृत्यु की ओर जा रहा है। आज जहां मनुष्य चन्द्रलोक और मंगललोक से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है वहां पहले इस छोटे से भूगोल पर तो अपने मैत्री-सम्बन्ध बनाए रखे? अनन्त अन्तरिक्ष में चार चांद लगा देना कोई बड़ी बात नहीं होगी। क्योंकि

सामाजिक प्राणी [illegible]
ही पनपा है। अतः—इन सब बातों का सारांश यही निकलता है कि
सामाजिक असन्तुलन ही भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण है।

(नरेला मण्डी (दिल्ली) के वार्षिक समारोह पर दिए गए भाषण से)

दर्शन का फलित सत्य व अहिंसा : विज्ञान का फलित अणुबम व उद्जनबम

दर्शन अन्ध—विश्वासों का पुलिन्दा नहीं है, जैसा कि कुछ लोग समझ बैठे हैं। वह तो यथार्थता तक पहुंचने के लिए एक तर्क सम्मत मार्ग है। यह भी समुचित नहीं है कि दर्शन उस विद्या का नाम है जिसमें केवल आत्मा सम्बन्धी विचार किया जाता है। भारतीय दार्शनिकों ने आत्मा व अणु दोनों पर समान रूप से विचार किया है। जड़ और चेतन दोनों उनके विषय रहे हैं।

आज परमाणुवाद का युग है। परमाणु के विषय में अप्रत्याशित खोजें हो चली हैं, पर यह जानकर बहुतों को आश्चर्य होगा कि आज की नवीनतम खोजें सहस्रों वर्ष पूर्व के दार्शनिक युग को प्रकाश में लाने वाली सिद्ध हो रही हैं। जैन व वैशेषिक दर्शन में परमाणु पर पर्याप्त विचार किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः" परमाणु पदार्थ मात्र का अन्त्य कारण, सूक्ष्म व नित्य है। वह अनन्त धर्मात्मक है। इसलिए स्वर्ण से रजत व अन्य किसी भी पदार्थ स्वरूप में परिणत हो सकता है। दार्शनिकों का यह अभिमत बहुत दिनों तक वैज्ञानिकों को मान्य नहीं हो सका। पर

आज नवीनतम विज्ञान का विद्यार्थी भी भली भांति जानता है—कोई भी मौलिक तत्त्व ऋणाणु व धनाणुओं के परिवर्तन से किसी भी स्वरूप में बदला जा सकता है। पारे को सोने में बदलने के प्रयोग तो प्रयोग-शालाओं में भी हो चुके हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थी भारतीय दर्शन के मनन में लग लें। वैसे दर्शन और विज्ञान में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही सत्य के पथिक हैं। अन्तर है तो केवल इतना ही है कि दर्शन का फलित; सत्य व अहिंसा है और विज्ञान का फलित; अणुबम और उदजनबम।

(हिन्दू कालेज (दिल्ली) के छात्र व छात्राओं के बीच दिए गए भाषण से)

मानवता में चार चांद

विज्ञान का युग है। रूस के वैज्ञानिकों ने दो चांद आकाश में लगा दिए हैं। सम्भव है शीघ्र ही वे चार चांद भी लगा देंगे। विज्ञान के इति-हास में यह एक नया पृष्ठ जुड़ा है। पर एक ओर मनुष्य भौतिक उन्नति के शिखर पर पैर जमा रहा है और दूसरी ओर स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों से पराभूत होकर मानवता को ही....तिलाञ्जलि दे रहा है। भाई भाई के बीच झगड़ा है और देश देश के बीच शीत-युद्ध चल रहा है। छोटे छोटे स्वार्थों को लेकर देशीय और अन्तर्देशीय समस्याएं उभर आती हैं। लगता है मनुष्य प्रकाश से तम की ओर जा रहा है, सद् से असद् की ओर जा रहा है और अमृत से मृत्यु की ओर जा रहा है। आज जहां मनुष्य चन्द्रलोक और मंगललोक से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है वहां पहले इस छोटे से भूगोल पर तो अपने मैत्री-सम्बन्ध बनाए रखे? अनन्त अन्तरिक्ष में चार चांद लगा देना कोई बड़ी बात नहीं होगी। क्योंकि

नहां तो पहले ही [illegible] है। यह कोई आवश्यक नहीं नहीं है। आवश्यक तो यह है कि आज का मानव [illegible] के संजीवन में भार [illegible] बनाए।

भारतीय अध्यात्म का फलित विश्व-बन्धुता

आज देश में विभिन्न संकीर्ण मनोवृत्तियों के कारण प्रान्त, जाति, धर्म व भाषा प्रभृति विषयों को लेकर व्यापक तनाव उभर आ रहे हैं। यहां तक कि लोग दक्षिण व उत्तर के नाम पर, द्रविड़ संस्कृति व आर्य-संस्कृति के नाम पर नित नये संघर्ष खड़े करने लगे हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि इन छोटी बातों से हम भारतीयता को सीमित कर रहे हैं। भारतीय लोक जीवन का मेरुदंड अध्यात्म रहा है और उस अध्यात्म का फलित अखंड विश्व-बन्धुता है। उसमें तो प्रान्तीयता व राष्ट्रीयता से भी बहुत आगे मानव और पशु तक के सह-अस्तित्व की बात है। छोटे और बड़े किसी भी संघर्ष के मूल में स्वार्थवाद का ही उद्दीपन हुआ करता है। स्वार्थ की विभिन्न सीमाएं होती हैं। व्यक्ति, परिवार, समाज व देश आदि की सीमाओं को लांघ कर मनुष्य जब तक विश्व बन्धुता की सार्वभौम मं-जिल तक नहीं पहुंच जाता तब तक वह स्वार्थ मुक्त नहीं कहला सकता। यह सच है कि वह मञ्जिल आज के मानव धरातल से बहुत दूर है। मनुष्य का चिन्तन अब तक वहां नहीं पहुंच रहा है। फिर भी यह आवश्यक है ही कि वर्तमान स्थितियों में सन्तुलन रखने के लिए अपने स्वार्थों के हित में दूसरों के स्वार्थों का हनन न किया जाए। यदि ऐसा भी होगा तो देश के प्रस्तुत तनावों में अवश्य घटाव होगा।

(नोटी फाइड एरिया कमेटी (दिल्ली) के अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

नैतिक उत्थान ही सर्वोत्तम विकास

देश में एक पंचवर्षीय योजना समाप्त हो चुकी है और दूसरी कार्यान्वित हो रही है। दोनों योजनाओं में लगभग २५ अरब व ५० अरब रुपयों के व्यय से देश का काया पलट किया जा रहा है। बड़े बड़े बान्ध, बड़ी बड़ी सड़कें, बड़े बड़े भवन व बड़े बड़े उद्योग धन्धे खड़े किए जा रहे हैं पर यह सब भौतिक विकास है। नैतिक व आध्यात्मिक विकास की कोई पंचवर्षीय योजना अब तक सामने नहीं आ रही है। नैतिक स्तर बहुत नीचा हो चला है और नीचा होने की रफ्तार चालू है। नैतिकता के अभाव में होने वाला भौतिक विकास आत्मा रहित शरीर के शोष जैसा हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है इन आर्थिक पंच-वर्षीय योजनाओं के साथ साथ नैतिक उत्थान की पंचवर्षीय योजनाएं भी देश में कार्यान्वित की जाएं। अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में सम्भव प्रयत्न कर रहा है।

(दिल्ली राज्य विक्रीकर अधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

सत्य, अहिंसा और संतोष ही सुख की मञ्जिल

मनुष्य ज्यों ज्यों अपनी आवश्यकताओं और आवश्यकता पूर्ति के साधनों को बढ़ाता गया है त्यों त्यों उसमें असन्तोष और अतृप्ति भी बढ़ती गई है। आज ट्रैक्टरों से खेती होती है, पर अन्न का अभाव है, अठमंजिले मकान बन गए हैं फिर भी लोग बेघरबार हैं। जब तक मनुष्य की निष्ठा त्याग में न रह कर भोग में रहेगी, जीवन का सुख और सन्तोष मृगमारीचिका की तरह दूर ही रहेगा।

नहीं तो पहले ही [illegible] है। यह कोई [illegible] नहीं है। आवश्यक तो यह है कि [illegible] के [illegible] में चार चांद लगाएं।

भारतीय अध्यात्म का फलित विश्व-बन्धुता

आज देश में विभिन्न संकीर्ण मनोवृत्तियों के कारण प्रान्त, जाति, धर्म व भाषा प्रभृति विषयों को लेकर व्यापक तनाव उभरते जा रहे हैं। यहां तक कि लोग दक्षिण व उत्तर के नाम पर, द्रविड़ संस्कृति व आर्य-संस्कृति के नाम पर नित नये संघर्ष खड़े करने लगे हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि इन छोटी बातों से हम भारतीयता को सीमित कर रहे हैं। भारतीय लोक जीवन का मेरुदण्ड अध्यात्म रहा है और उस अध्यात्म का फलित अखंड विश्व-बन्धुता है। उसमें तो प्रान्तीयता व राष्ट्रीयता से भी बहुत आगे मानव और पशु तक के सह-अस्तित्व की बात है। छोटे और बड़े किसी भी संघर्ष के मूल में स्वार्थवाद का ही उद्दीपन हुआ करता है। स्वार्थ की विभिन्न सीमाएं होती हैं। व्यक्ति, परिवार, समाज व देश आदि की सीमाओं को लांघ कर मनुष्य जब तक विश्व बन्धुता की सार्वभौम मंजिल तक नहीं पहुंच जाता तब तक वह स्वार्थ मुक्त नहीं कहला सकता। यह सच है कि वह मञ्जिल आज के मानव धरातल से बहुत दूर है। मनुष्य का चिन्तन अब तक वहां नहीं पहुंच रहा है। फिर भी यह आवश्यक है ही कि वर्तमान स्थितियों में सन्तुलन रखने के लिए अपने स्वार्थों के हित में दूसरों के स्वार्थों का हनन न किया जाए। यदि ऐसा भी होगा तो देश के प्रस्तुत तनावों में अवश्य घटाव होगा।

(नोटीफाइड एरिया कमेटी (दिल्ली) के अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)

नैतिक उत्थान ही सर्वोत्तम विकास

देश में एक पंचवर्षीय योजना सम्पन्न हो चुकी है और दूसरी कार्यान्वित हो रही है। दोनों योजनाओं में लगभग २५ अरब व ५० अरब रुपयों के व्यय से देश का काया पलट किया जा रहा है। बड़े बड़े बान्ध, बड़ी बड़ी सड़कें, बड़े बड़े भवन व बड़े बड़े उद्योग धन्धे खड़े किए जा रहे हैं पर यह सब भौतिक विकास है। नैतिक व आध्यात्मिक विकास की कोई पंचवर्षीय योजना अब तक सामने नहीं आ रही है। नैतिक स्तर बहुत नीचा हो चला है और नीचा होने की रफ्तार चालू है। नैतिकता के अभाव में होने वाला भौतिक विकास आत्मा रहित शरीर के शोर जैसा हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है इन आर्थिक पंचवर्षीय योजनाओं के साथ साथ नैतिक उत्थान की पंचवर्षीय योजनाएं भी देश में कार्यान्वित की जाएं। अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में सम्भव प्रयत्न कर रहा है।

(दिल्ली राज्य विक्रीकर अधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

सत्य, अहिंसा और संतोष ही सुख की मञ्जिल

मनुष्य ज्यों ज्यों अपनी आवश्यकताओं और आवश्यकता पूर्ति के साधनों को बढ़ाता गया है त्यों त्यों उसमें असन्तोष और अतृप्ति भी बढ़ती गई है। आज ट्रैक्टरों से खेती होती है, पर अन्न का अभाव है, अठमंजिले मकान बन गए हैं फिर भी लोग बेघरबार हैं। जब तक मनुष्य की निष्ठा त्याग में न रह कर भोग में रहेगी, जीवन का सुख और सन्तोष मृगमारीचिका की तरह दूर ही रहेगा।

दुःख की बात है कि भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश में भोग [illegible] और ऐश्वर्य, विलासिता और भौतिक संस्कृति के प्रभाव [illegible] मान्यताओं को नष्ट करने में लिप्त रहे हैं और आज अहिंसा पर [illegible] देश में [illegible] हिंसा हो रही है। इन्हें यह पता नहीं चलता कि मानव और [illegible] में [illegible] आदान-प्रदान का सम्बन्ध है। [illegible] के लिए [illegible] है और [illegible] की दुर्दशा है। इसका विशेषज्ञों ने ध्यान दिया है। यहाँ पर अहिंसा [illegible] आस्था और [illegible] का निश्चय होगा।

(बम्बई में [illegible] द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय संस्कृति में बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यों में इसकी परिभाषाएं बदल गई हैं। आज भूमि दान या सम्पत्ति दान करने वाले व्यक्ति को यह मानने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बड़ा उपकार या पुण्य कर रहा हूं। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है वह संविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-चर्या के प्रसंग में कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असंविभागी को मोक्ष नहीं है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका संग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान व पुण्य नहीं कर रहा है। क्योंकि सम्पत्ति जिस

दुःख की बात है कि [illegible] देश में लोग [illegible] और [illegible] सिनेमाओं और [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] देश में [illegible] सिनेमा [illegible] । [illegible] सिनेमा [illegible] । सिनेमा [illegible] के लिए [illegible] है और [illegible] । उसका विशेषरूपेण ध्यान दिया है। [illegible] आत्मा और [illegible] ।

(बम्बई में [illegible] द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय संस्कृति में बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यों में इसकी परिभाषा बदल गयी है। आज भूमि दान या सम्पत्ति दान करने वाले व्यक्ति को यह मानने की आवश्यकता नहीं यह नहीं है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बड़ा उपकार या पुण्य कर रहा हूँ। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है वह संविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-धर्म के प्रसंग में कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असंविभागी को मोक्ष नहीं है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका संग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान या पुण्य नहीं कर रहा है। क्योंकि सम्पत्ति जिस

दुःख की बात है कि स्वतन्त्रता के बाद धर्म-प्रधान देश में लोग धर्म-संस्था और नैतिक सिद्धान्तों और भारतीय संस्कृति के प्रधान प्रतीक साधुओं को एक कोटि से भिन्न देखते हैं और साधु असम्मान पा रहे हैं देश में कुछ ऐसा विचार है। इसे बहुत सा नहीं स्वीकार किया गया और विद्यार्थी में विनय अनुशासन-पालन का अभाव है। विद्यार्थी जब एक बात के लिए लड़ता है और बाद ऐसे कार्य में तत्परता व दोषों की प्रवृत्ति को दुहराता है। उसका विवेकपूर्ण ध्यान किया है। यहां यह अनुशासन स्थापना और सहज मन विशेष ध्यान।

(बम्बई में विद्यार्थी मण्डल द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय संस्कृति में बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यों में इसकी परिभाषाएं बदल रही हैं। आज भूमि दान या सम्पत्ति दान करने वाले व्यक्ति को यह मानने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बड़ा उपकार या पुण्य कर रहा हूं। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है वह संविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-चर्या के प्रसंग में कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असंविभागी को मोक्ष नहीं है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका संग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान या पुण्य नहीं कर रहा है। क्योंकि सम्पत्ति जिस

दुःख की बात है कि भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश में लोग त्यागी और विशेषतः भिखमंगों और भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक साधुजनों को एक कोटि में गिन लेते हैं और प्रायः अवसर पर कह देते हैं देश में ५६ लाख भिखारी हैं। उन्हें यह पता नहीं लगता कि साधु और भिखारी में कितना आसमान-पाताल का अन्तर है। भिखारी एक-एक दाने के लिए तड़पता है और साधु होने वालों ने करोड़ों व लाखों की सम्पत्ति को ठुकराया है। उसका विवेकपूर्ण त्याग किया है। कहां यह अतुल त्याग और कहां वह विवश मांग।

(बम्बई में वेदान्त सत्संग मण्डल द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय संस्कृति में बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यों में उसकी परिभाषाएं बदल रही हैं। आज भूमि दान या सम्पत्ति दान करने वाले व्यक्ति को यह सोचने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बड़ा उपकार या पुण्य कर रहा हूं। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है वह संविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-चर्या के प्रसंग में कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असंविभागी को मोक्ष नहीं है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका संग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान व पुण्य नहीं कर रहा है। क्योंकि सम्पत्ति पिता

दुःख की बात है कि भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश में लोग सरकार और विशेषकर भिखमंगों और भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक साधुजनों को एक कोटि में गिन लेते हैं और प्रायः अवसर पर कह देते हैं देश में ५६ लाख भिखारी हैं। उन्हें यह पता नहीं लगता कि साधु और भिखारी में कितना आकाश-पाताल का अन्तर है। भिखारी एक-एक दाने के लिए तड़पता है और साधु होने वालों ने महलों व रत्नों की सम्पत्ति को ठुकराया है। उसका विवेकपूर्ण त्याग किया है। अतः यह अन्तर जानना और कहना बहुत आवश्यक।

(बम्बई में वेदान्त सत्संग मण्डल द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय संस्कृति में बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यों में उसकी परिभाषा बदल रही है। आज भूमि दान या सम्पत्ति दान करने वाले व्यक्ति को यह सोचने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बड़ा उपकार या पुण्य कर रहा हूं। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है वह संविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-चर्या के प्रसंग में कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असंविभागी को मोक्ष नहीं है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका संग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान व पुण्य नहीं कर रहा है। क्योंकि सम्पत्ति पिता

दुःख की बात है कि भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश में लोग अकर्मण्य और पेशेवर भिखमंगों और भारतीय संस्कृति के उज्वल प्रतीक साधुजनों को एक कोटि में गिन लेते हैं और आए अवसर पर कह देते हैं देश में ७५ लाख भिखारी हैं। उन्हें यह पता नहीं चलता कि साधु और भिखारी में कितना आकाश-पाताल का अन्तर है। भिखारी एक एक दाने के लिए तड़पता है और साधु होने वालों ने सहस्रों व लाखों की सम्पत्ति को ठुकराया है। उसका विवेकपूर्ण त्याग किया है। कहां वह अतृप्त लालसा और कहां वह निरुपम त्याग।

(बम्बई में वेदान्त सत्संग मंडल द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय संस्कृति में बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यों में इसकी परिभाषाएं बदल रही है। आज भूमि दान या सम्पत्ति दान करने वाले व्यक्ति को यह सोचने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बड़ा उपकार या पुण्य कर रहा हूं। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है वह संविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-चर्या के प्रसंग में कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असंविभागी को मोक्ष नहीं है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका संग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान व पुण्य नहीं कर रहा

दुःख की बात है कि भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश में लोग अकर्मण्य और पेशेवर भिखमंगों और भारतीय संस्कृति के उज्वल प्रतीक साधुजनों को एक कोटि में गिन लेते हैं और आए अवसर पर कह देते हैं देश में ७५ लाख भिखारी हैं। उन्हें यह पता नहीं चलता कि साधु और भिखारी में कितना आकाश-पाताल का अन्तर है। भिखारी एक एक दाने के लिए तड़पता है और साधु होने वालों ने सहस्रों व लाखों की सम्पत्ति को ठुकराया है। उसका विवेकपूर्ण त्याग किया है। कहां वह अतृप्त लालसा और कहा वह निरुपम त्याग।

(बम्बई में वेदान्त सत्संग मंडल द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय संस्कृति में बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यों में इसकी परिभाषाएं बदल रही है। आज भूमि दान या सम्पति दान करने वाले व्यक्ति को यह सोचने की आवश्यकता नहीं रह गई है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बड़ा उपकार या पुण्य कर रहा हूं। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है है वह संविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-चर्या के प्रसंग में कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असंविभागी को मोक्ष नहीं है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका संग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान व पुण्य नहीं कर रहा है। क्योंकि सम्पत्ति पिता

मानव की निष्ठा संचय और संग्रह में न होकर त्याग में हो तो फिर द्वन्द्व की क्या सम्भावना रहती है? इसलिए हमारा आग्रह त्याग पर है। भारत की सांस्कृतिक परम्परानुसार भी त्याग धर्म को ही श्रेष्ठ माना गया है।

आज की न्याय व्यवस्था बोझिल और अमनोवैज्ञानिक

एक युग था जब राजा स्वयं न्यायालय में बैठता था, मामले सुनता था और तत्काल उनका फैसला दे देता था। पर आज न्याय पा लेना इतना सुगम कहां? अब तो छोटी छोटी बातों में वर्षों का समय लग जाता है और बड़े मामलों में तो पीढ़ियां बदल जाती हैं। तिस पर भी परेशानियां इतनी कि क्षण भर भी मनुष्य शान्तिपूर्ण अध्यवसाय कठिनता से रख पाता है। अब यह सब प्रकार से स्पष्ट हो चुका है—वर्तमान न्याय-व्यवस्था अत्यन्त बोझिल व अमनोवैज्ञानिक है।

गवाह और सबूत चालू न्याय व्यवस्था के प्रमुख मान-दण्ड हैं। न्यायाधीश के अन्तःकरण की अनुभूति का वहां जरा भी स्थान नहीं है। बहुत बार न्यायाधीश सोचता है कुछ और फैसला देना पड़ता है कुछ और। मनोविज्ञान की यह उपेक्षा न्याय-प्रणाली की अपूर्णता बताती है। इसमें सत्य को साबित करने लिए असत्य गवाह चाहिए।

'दिल्ली रिकवरी डिपार्टमेंट, रेवेन्यू डिपार्टमेंट और लैण्ड एग्जीविशन के अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)।

सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है

अनैतिकता की महामारी जिस प्रकार देश में फैल चुकी है और आए दिन बढ़ती जा रही है, उसक — यदि नहीं हुआ तो देश में मानवता

मानव की निष्ठा संचय और संग्रह में न होकर त्याग में हो तो फिर दान की क्या सम्भावना रहती है? इसलिए हमारा आग्रह त्याग पर है। भारत की सांस्कृतिक परम्परानुसार भी त्याग धर्म को ही श्रेष्ठ माना गया है।

आज की न्याय व्यवस्था बोझिल और अमनोवैज्ञानिक

एक युग था जब राजा स्वयं न्यायालय में बैठता था, मामले सुनता था और तत्काल उनका फैसला दे देता था। पर आज न्याय पा लेना इतना सुगम कहां? अब तो छोटी छोटी बातों में वर्षों का समय लग जाता है और बड़े मामलों में तो पीढ़ियां बदल जाती हैं। फिर पर भी परेशानियां इतनी कि क्षण भर भी मनुष्य शान्तिपूर्ण अध्यवसाय कठिनता से रख पाता है। अब यह सब प्रकार से स्पष्ट हो चुका है—वर्तमान न्याय-व्यवस्था अत्यन्त बोझिल व अमनोवैज्ञानिक है।

गवाह और सबूत चालू न्याय व्यवस्था के प्रमुख मान-दण्ड हैं। न्यायाधीश के अन्तःकरण की अनुभूति का वहां जरा भी स्थान नहीं है। बहुत बार न्यायाधीश सोचता है कुछ और फैसला देना पड़ता है कुछ और। मनोविज्ञान की यह उपेक्षा न्याय-प्रणाली की अपूर्णता बताती है। इसमें सत्य को साबित करने लिए असत्य गवाह चाहिए।

(दिल्ली रिकवरी डिपार्टमेंट, रेवेन्यू डिपार्टमेंट और लैण्ड एक्जीविशन के अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच दिए गए भाषण से)।

सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है

अनैतिकता की महामारी [illegible]
आए दिन बढ़ती जा रही है, उस

जीवित नहीं रह सकती। नैतिकता धर्म वृक्ष की एक टहनी है; पर आज धर्म वृक्ष ही स्वयं जर्जरित सा नजर आ रहा है। साधु वेश बहुत सारे लोगों के लिए एक ठगी का बनाव हो गया है। जहां साधु संसार का सुधार करते थे वहां आज उनके सुधार की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं। तीर्थ मनः शुद्धि के साधन न होकर बहुत सारे अकर्मण्य लोगों के उदर-पूर्ति के साधन हो रहे हैं। भारतवासी जागत हों। पुराण, उपनिषद् व आगमों के अनुसार सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

देहली का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्राधान्य भी आवश्यक

देहली भारतवर्ष का ऐतिहासिक नगर है। सदा से यह दूसरे नगरों पर शासन करता रहा है। आज उसका दायित्व और भी बढ़ गया है। विदेशी लोगों के सामने यह भारतवर्ष की एक तस्वीर है। देहली के लोगों का जो आचार विचार होगा, वह सारे भारतवर्ष की संस्कृति के रूप में देखा जाएगा। प्राचीन काल में ह्वेनत्सांग, मैगस्थनीज, फाहियान, आदि जो विदेशी बाहर से आए उन्होंने भारतवर्ष के एक एक शहर को देखा हो ऐसी बात नहीं, पर भारतवर्ष के प्रमुख शहर राजगृही, पाटलीपुत्र आदि में जो आचार विचार देखा वही उन्होंने अपने देशवासियों को बताया। उन कतिपय शहरों के आचार-विचार को ही संसार ने सारे भारत का आचार-व्यवहार समझा। इसलिए आवश्यक है राजनैतिक प्राधान्य की तरह देहली का सांस्कृतिक, नैतिक और अध्यात्मिक प्राधान्य भी हो विगत सात वर्षों से देहली में अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम चल रह है, और भी संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं; पर मुझे लगता है लो पर छाए भ्रष्टाचार रूप कर्दम को नैतिक प्रयत्नों की नन्हीं नन्हीं बूंदें मिटा नहीं सकतीं। इसके लिए अपेक्षा है सामुदायिक महावृष्टि की ताकि गिरी

हुई बूंदों के सूखने से पहिले ही वह नैतिक जल प्रवाह देहलीवासियों के घट घट में भर जाए।

सुख और शान्ति का स्रोत मानव का अन्तःकरण

भारत ने अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है, तो उसे भावी समाज व्यवस्था का आधार भी अहिंसक भावना को ही बनाना चाहिए। आज धार्मिक विषमता और शोषण के कारण प्रतिहिंसा की भावना जोर पकड़ती जा रही है। परन्तु वास्तव में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न के उन्मूलन का मार्ग विध्वंस और रक्तपात नहीं; त्याग और अपरिग्रह हैं। आज के व्यापारी वर्ग को भली भांति अनुभव कर लेना चाहिए कि अगर वह अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर त्याग और अपरिग्रह की भावना को नहीं अपनाता है तो स्वयं वह एक हिंसात्मक क्रान्ति को आमंत्रण देता है। अनैतिक उपायों द्वारा अधिक से अधिक अर्थ उपार्जित करने की प्रवृत्ति स्वयं व्यापारी वर्ग के लिए अवांछनीय है और इसे दूर करने के लिए व्यापारी समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि सुख और शान्ति भौतिक समृद्धि में है। ज्यों ज्यों भौतिक साधनों की वृद्धि होती गई है त्यों त्यों सुख और शान्ति न्यूनतर होती जा रही है। वास्तव में सुख और शान्ति का स्रोत मानव के अन्तःस्थल में है और उसे आध्यात्मिक अभ्युदय के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(दिल्ली मर्केन्टाइल एसोसिएशन के पदाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

उपासना और आचार में सामञ्जस्य जरूरी

आज का मानव जीवन साधारणतया तीन भागों में बांटा जा सकता है—पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु आज मानव-जीवन के तीनों ही पहलू समस्याओं के आवरण में अस्त-व्यस्त से

जीवित नहीं रह सकती। नैतिकता धर्म वृक्ष की एक टहनी है; पर आज धर्म वृक्ष ही स्वयं जर्जरित सा नजर आ रहा है। साधु वेश बहुत सारे लोगों के लिए एक ठगी का बनाव हो गया है। जहां साधु संसार का सुधार करते थे वहां आज उनके सुधार की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं। तीर्थ मनः शुद्धि के साधन न होकर बहुत सारे अकर्मण्य लोगों के उदर-पूर्ति के साधन हो रहे हैं। भारतवासी जागृत हों। पुराण, उपनिषद् व आगमों के अनुसार सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

देहली का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्राधान्य भी आवश्यक

देहली भारतवर्ष का ऐतिहासिक नगर है। सदा से यह दूसरे नगर पर शासन करता रहा है। आज उसका दायित्व और भी बढ़ गया है विदेशी लोगों के सामने यह भारतवर्ष की एक तस्वीर है। देहली लोगों का जो आचार विचार होगा, वह सारे भारतवर्ष की संस्कृति के में देखा जाएगा। प्राचीन काल में ह्वेनत्सांग, मैगस्थनीज, फाहियान, आद जो विदेशी बाहर से आए उन्होंने भारतवर्ष के एक एक शहर को देखा हो ऐसी बात नहीं, पर भारतवर्ष के प्रमुख शहर राजगृही, पाटलीपुत्र आदि में जो आचार विचार देखा वही उन्होंने अपने देशवासियों को बताया। उन कतिपय शहरों के आचार-विचार को ही संसार ने सारे भारत का आचार-व्यवहार समझा। इसलिए आवश्यक है राजनैतिक प्राधान्य की तरह देहली का सांस्कृतिक, नैतिक और अध्यात्मिक प्राधान्य भी हो। विगत सात वर्षों से देहली में अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम चल रहा है, और भी संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं; पर मुझे लगता है लोगों पर छाए भ्रष्टाचार रूप कर्दम को नैतिक प्रयत्नों की नन्हीं नन्हीं बूंदें मिटा नहीं सकतीं। इसके लिए अपेक्षा है सामुदायिक महावृष्टि की ताकि गिर

हुई बूंदों के सूखने से पहिले ही वह नैतिक जल प्रवाह देहलीवासियों के घट घट में भर जाए।

सुख और शान्ति का स्रोत मानव का अन्तःकरण

भारत ने अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है, तो उसे भावी समाज व्यवस्था का आधार भी अहिंसक भावना को ही बनाना चाहिए। आज धार्मिक विषमता और शोषण के कारण प्रतिहिंसा की भावना जोर पकड़ती जा रही है। परन्तु वास्तव में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न के उन्मूलन का मार्ग विध्वंस और रक्तपात नहीं; त्याग और अपरिग्रह है। आज के व्यापारी वर्ग को भली भांति अनुभव कर लेना चाहिए कि अगर वह अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर त्याग और अपरिग्रह की भावना को नहीं अपनाता है तो स्वयं वह एक हिंसात्मक क्रान्ति को आमंत्रण देता है। अनैतिक उपायों द्वारा अधिक से अधिक अर्थ उपार्जित करने की प्रवृत्ति स्वयं व्यापारी वर्ग के लिए अवांछनीय है और इसे दूर करने के लिए व्यापारी समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि सुख और शान्ति भौतिक समृद्धि में है। ज्यों ज्यों भौतिक साधनों की वृद्धि होती गई है त्यों त्यों सुख और शान्ति न्यूनतर होती जा रही है। वास्तव में सुख और शान्ति का स्रोत मानव के अन्तःस्थल में है और उसे आध्यात्मिक अभ्युदय के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(दिल्ली मर्कन्टाइल एसोसिएशन के पदाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

उपासना और आचार में सामञ्जस्य जरूरी

आज का मानव जीवन साधारणतया तीन भागों में बांटा जा सकता है—पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु आज मानव-जीवन के तीनों ही पहलू समस्याओं के आवरण में अस्त-व्यस्त से

जीवित नहीं रह सकती। नैतिकता धर्म वृक्ष की एक टहनी है; पर आज धर्म वृक्ष ही स्वयं जर्जरित सा नजर आ रहा है। साधु वेश बहुत सारे लोगों के लिए एक ठगी का बनाव हो गया है। जहां साधु संसार का सुधार करते थे वहां आज उनके सुधार की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं। तीर्थ मनः शुद्धि के साधन न होकर बहुत सारे अकर्मण्य लोगों के उदर-पूर्ति के साधन हो रहे हैं। भारतवासी जागृत हों। पुराण, उपनिषद् व आगमों के अनुसार सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

देहली का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्राधान्य भी आवश्यक

देहली भारतवर्ष का ऐतिहासिक नगर है। सदा से यह दूसरे नगरों पर शासन करता रहा है। आज उसका दायित्व और भी बढ़ गया है। विदेशी लोगों के सामने यह भारतवर्ष की एक तस्वीर है। देहली के लोगों का जो आचार विचार होगा, वह सारे भारतवर्ष की संस्कृति के रूप में देखा जाएगा। प्राचीन काल में ह्वेनत्सांग, मेगस्थनीज, फाहियान, आदि जो विदेशी बाहर से आए उन्होंने भारतवर्ष के एक एक शहर को देखा हो ऐसी बात नहीं, पर भारतवर्ष के प्रमुख शहर राजगृही, पाटलीपुत्र आदि में जो आचार विचार देखा वही उन्होंने अपने देशवासियों को बताया। उन कतिपय शहरों के आचार-विचार को ही संसार ने सारे भारत का आचार-व्यवहार समझा। इसलिए आवश्यक है राजनैतिक प्राधान्य की तरह देहली का सांस्कृतिक, नैतिक और अध्यात्मिक प्राधान्य भी हो। विगत सात वर्षों से देहली में अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम चल रहा है, और भी संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं; पर मुझे लगता है लोगों पर छाए भ्रष्टाचार रूप कर्दम को नैतिक प्रयत्नों की नन्हीं नन्हीं बूंदें मिटा

हुई बूंदों के सूखने से पहिले ही वह नैतिक जल प्रवाह देहलीवासियों के घट घट में भर जाए।

सुख और शान्ति का स्रोत मानव का अन्तःकरण

भारत ने अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है, तो उसे भावी समाज व्यवस्था का आधार भी अहिंसक भावना को ही बनाना चाहिए। आज धार्मिक विषमता और शोषण के कारण प्रतिहिंसा की भावना जोर पकड़ती जा रही है। परन्तु वास्तव में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न के उन्मूलन का मार्ग विध्वंस और रक्तपात नहीं; त्याग और अपरिग्रह है। आज के व्यापारी वर्ग को भली भांति अनुभव कर लेना चाहिए कि अगर वह अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर त्याग और अपरिग्रह की भावना को नहीं अपनाता है तो स्वयं वह एक हिंसात्मक क्रान्ति को आमंत्रण देता है। अनैतिक उपायों द्वारा अधिक से अधिक अर्थ उपार्जित करने की प्रवृत्ति स्वयं व्यापारी वर्ग के लिए अवांछनीय है और इसे दूर करने के लिए व्यापारी समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि सुख और शान्ति भौतिक समृद्धि में है। ज्यों ज्यों भौतिक साधनों की वृद्धि होती गई है त्यों त्यों सुख और शान्ति न्यूनतर होती जा रही है। वास्तव में सुख और शान्ति का स्रोत मानव के अन्तःस्थल में है और उसे आध्यात्मिक अभ्युदय के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(दिल्ली मर्केन्टाइल एशोसिएशन के पदाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

उपासना और आचार में सामञ्जस्य जरूरी

आज का मानव जीवन साधारणतया तीन भागों में बांटा जा सकता है—पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु आज मानव-जीवन के तीनों ही पहलू समस्याओं के आवरण में अस्त-व्यस्त से

जीवित नहीं रह सकती। नैतिकता धर्म वृक्ष की एक टहनी है; पर आज धर्म वृक्ष ही स्वयं जर्जरित सा नजर आ रहा है। साधु वेश बहुत सारे लोगों के लिए एक ठगी का बनाव हो गया है। जहां साधु संसार का सुधार करते थे वहां आज उनके सुधार की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं। तीर्थ मनः शुद्धि के साधन न होकर बहुत सारे अकर्मण्य लोगों के उदर-पूर्ति के साधन हो रहे हैं। भारतवासी जागृत हों। पुराण, उपनिषद् व आगमों के अनुसार सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

देहली का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्राधान्य भी आवश्यक

देहली भारतवर्ष का ऐतिहासिक नगर है। सदा से यह दूसरे नगरों पर शासन करता रहा है। आज उसका दायित्व और भी बढ़ गया है। विदेशी लोगों के सामने यह भारतवर्ष की एक तस्वीर है। देहली के लोगों का जो आचार विचार होगा, वह सारे भारतवर्ष की संस्कृति के रूप में देखा जाएगा। प्राचीन काल में ह्वेनत्सांग, मैगस्थनीज, फाहियान, आदि जो विदेशी बाहर से आए उन्होंने भारतवर्ष के एक एक शहर को देखा हो ऐसी बात नहीं, पर भारतवर्ष के प्रमुख शहर राजगृही, पाटलीपुत्र आदि में जो आचार विचार देखा वही उन्होंने अपने देशवासियों को बताया। उन कतिपय शहरों के आचार-विचार को ही संसार ने सारे भारत का आचार-व्यवहार समझा। इसलिए आवश्यक है राजनैतिक प्राधान्य की तरह देहली का सांस्कृतिक, नैतिक और अध्यात्मिक प्राधान्य भी हो। विगत सात वर्षों से देहली में अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम चल रहा है, और भी संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं; पर मुझे लगता है लोगों पर छाए भ्रष्टाचार रूप कर्दम को नैतिक प्रयत्नों की नन्हीं नन्हीं बूंदें मिटा नहीं सकतीं। इसके लिए अपेक्षा है साम्प्रदायिक महावृष्टि

हुई बूंदों के सूखने से पहिले ही वह नैतिक जल प्रवाह देहजीवानियों के घट घट में भर जाए।

सुख और शान्ति का स्रोत मानव का अन्तःकरण

भारत ने अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है, तो उसे भावी समाज व्यवस्था का आधार भी अहिंसक भावना को ही बनाना चाहिए। आज धार्मिक विषमता और शोषण के कारण प्रतिहिंसा की भावना जोर पकड़ती जा रही है। परन्तु वास्तव में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न के उन्मूलन का मार्ग विध्वंस और रक्तपात नहीं, त्याग और अपरिग्रह है। आज के व्यापारी वर्ग को भली भांति अनुभव कर लेना चाहिए कि अगर वह अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर त्याग और अपरिग्रह की भावना को नहीं अपनाता है तो स्वयं वह एक हिंसात्मक क्रान्ति को आमंत्रण देता है। अनैतिक उपायों द्वारा अधिक से अधिक अर्थ उपार्जित करने की प्रवृत्ति स्वयं व्यापारी वर्ग के लिए अवांछनीय है और इसे दूर करने के लिए व्यापारी समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि सुख और शान्ति भौतिक समृद्धि में है। ज्यों ज्यों भौतिक साधनों की वृद्धि होती गई है त्यों त्यों सुख और शान्ति न्यूनतर होती जा रही है। वास्तव में सुख और शान्ति का स्रोत मानव के अन्तःस्थल में है और उसे आध्यात्मिक अभ्युदय के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(दिल्ली मर्केन्टाइल एसोसिएशन के पदाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

उपासना और आचार में सामञ्जस्य जरूरी

आज का मानव जीवन साधारणतया तीन भागों में बांटा जा सकता है—पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु आज मानव-जीवन के तीनों ही पहलू समस्याओं के आवरण में अस्त-व्यस्त से

जीवित नहीं रह सकती। नैतिकता धर्म का ही एक अंग रहती है; पर आज धर्म-गुरु तो स्वयं जर्जरित सा नजर आ रहा है। साधु वेश बहुत सारे लोगों के लिए एक धंधे का साधन हो गया है। जहां साधु संसार का सुधार करते थे वहां आज उनके सुधार की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं। तीर्थ मन-शुद्धि के साधन न होकर बहुत सारे अकर्मण्य लोगों के उदर-पूर्ति के साधन हो रहे हैं। भारतवासी जागृत हों। पुराण, उपनिषद् व आगमों के अनुसार सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

देहली का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्राधान्य भी आवश्यक

देहली भारतवर्ष का ऐतिहासिक नगर है। सदा से यह दूसरे नगरों पर शासन करता रहा है। आज उसका दायित्व और भी बढ़ गया है। विदेशी लोगों के सामने यह भारतवर्ष की एक तस्वीर है। देहली के लोगों का जो आचार विचार होगा, वह सारे भारतवर्ष की संस्कृति के रूप में देखा जाएगा। प्राचीन काल में ह्वेनत्सांग, मैगस्थनीज, फाहियान, आदि जो विदेशी बाहर से आए उन्होंने भारतवर्ष के एक एक शहर को देखा हो ऐसी बात नहीं, पर भारतवर्ष के प्रमुख शहर राजगृही, पाटलीपुत्र आदि में जो आचार विचार देखा वही उन्होंने अपने देशवासियों को बताया। उन कतिपय शहरों के आचार-विचार को ही संसार ने सारे भारत का आचार-व्यवहार समझा। इसलिए आवश्यक है राजनैतिक प्राधान्य की तरह देहली का सांस्कृतिक, नैतिक और अध्यात्मिक प्राधान्य भी हो। विगत सात वर्षों से देहली में अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम चल रहा है, और भी संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं; पर मुझे लगता है लोगों पर छाए भ्रष्टाचार रूप कर्दम को नैतिक प्रयत्नों की नन्हीं नन्हीं बूंदें मिटा नहीं सकतीं। इसके लिए अपेक्षा है सामुदायिक महावृष्टि की ताकि गिरी

बूंदों के घुलने से पहिले ही यह नैतिक बल प्रबल स्वदेशवासियों के घट घट में भर जाए।

सुख और शान्ति का स्रोत मानव का अन्तःकरण

मानव ने अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है, तो उसे भावी समाज व्यवस्था का आधार भी अहिंसक भावना को ही बनाना चाहिए। आज आर्थिक विषमता और शोषण के कारण प्रतिस्पर्धा की भावना और उत्पीड़न पनपती जा रही है। परन्तु वास्तव में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न के उन्मूलन का मार्ग विप्लव और रक्तपात नहीं, त्याग और अपरिग्रह है। आज के व्यापारी वर्ग को अच्छी भांति अनुभव कर लेना चाहिए कि अगर वह अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर त्याग और अपरिग्रह की भावना को नहीं अपनाता है तो स्वयं वह एक हिंसात्मक क्रान्ति को आमंत्रण देता है। अनैतिक उपायों द्वारा अधिक से अधिक अर्थ उपार्जित करने की प्रवृत्ति स्वयं व्यापारी वर्ग के लिए अवांछनीय है और इसे दूर करने के लिए व्यापारी समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि सुख और शान्ति भौतिक समृद्धि में है। ज्यों ज्यों भौतिक साधनों की वृद्धि होती गई है त्यों त्यों सुख और शान्ति न्यूनतर होती जा रही है। वास्तव में सुख और शान्ति का स्रोत मानव के अन्तःस्थल में है और उसे आध्यात्मिक अभ्युदय के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(दिल्ली मर्केन्टाइल एसोसिएशन के पदाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

उपासना और आचार में सामञ्जस्य जरूरी

आज का मानव जीवन साधारणतया तीन भागों में बांटा जा सकता है—पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु आज जीवन के तीनों ही पहलू समस्याओं के आवरण में अस्त-व्यस्त से

जीवित नहीं रह सकती। नैतिकता धर्म का ही एक अंग है; पर आज धर्म गुरु तो स्वयं अर्जन का साधन बन गया है। साधु वेश बहुत सारे लोगों के लिए एक धंधे का साधन हो गया है। जहाँ साधु संसार का सुधार करते थे वहाँ आज उनके सुधार की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं। तीर्थ मन शुद्धि के साधन न होकर बहुत सारे अकर्मण्य लोगों के उदर-पूर्ति के साधन हो रहे हैं। आत्मसाक्षी जागृत हो। पुराण, उपनिषद् व आगमों के अनुसार सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

देहली का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्राधान्य भी आवश्यक

देहली भारतवर्ष का ऐतिहासिक नगर है। सदा से यह दूसरे नगरों पर शासन करता रहा है। आज उसका दायित्व और भी बढ़ गया है। विदेशी लोगों के सामने यह भारतवर्ष की एक तस्वीर है। देहली के लोगों का जो आचार विचार होगा, वह सारे भारतवर्ष की संस्कृति के रूप में देखा जाएगा। प्राचीन काल में ह्वेनत्सांग, मैगस्थनीज, फाहियान, आदि जो विदेशी बाहर से आए उन्होंने भारतवर्ष के एक एक शहर को देखा हो ऐसी बात नहीं, पर भारतवर्ष के प्रमुख शहर राजगृही, पाटलीपुत्र आदि में जो आचार विचार देखा वही उन्होंने अपने देशवासियों को बताया। उन कतिपय शहरों के आचार-विचार को ही संसार ने सारे भारत का आचार-व्यवहार समझा। इसलिए आवश्यक है राजनैतिक प्राधान्य की तरह देहली का सांस्कृतिक, नैतिक और अध्यात्मिक प्राधान्य भी हो। विगत सात वर्षों से देहली में अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम चल रहा है, और भी संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं; पर मुझे लगता है लोगों पर छाए भ्रष्टाचार रूप कर्दम को नैतिक प्रयत्नों की नन्हीं नन्हीं बूंदें मिटा नहीं सकतीं। इसके लिए अपेक्षा है सामुदायिक महावृष्टि की तो

हुई बूँदों के सूखने से पहिले ही यह नैतिक जल प्रवाह सब देशवासियों के घट घट में भर जाए।

सुख और शान्ति का स्रोत मानव का अन्तःकरण

भारत ने अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है, तो उसे भावी समाज व्यवस्था का आधार भी अहिंसक भावना को ही बनाना चाहिए। आज आर्थिक विषमता और शोषण के कारण प्रतिहिंसा की भावना जोर पकड़ती जा रही है। परन्तु वास्तव में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न के उन्मूलन का मार्ग विप्लव और रक्तपात नहीं, त्याग और अपरिग्रह है। आज के व्यापारी वर्ग को भली भांति अनुभव कर लेना चाहिए कि अगर वह अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर त्याग और अपरिग्रह की भावना को नहीं अपनाता है तो स्वयं वह एक हिंसात्मक क्रान्ति को आमंत्रण देता है। अनैतिक उपायों द्वारा अधिक से अधिक अर्थ उपार्जित करने की प्रवृत्ति स्वयं व्यापारी वर्ग के लिए अवांछनीय है और इसे दूर करने के लिए व्यापारी समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि सुख और शान्ति भौतिक समृद्धि में है। ज्यों ज्यों भौतिक साधनों की वृद्धि होती गई है त्यों त्यों सुख और शान्ति न्यूनतर होती जा रही है। वास्तव में सुख और शान्ति का स्रोत मानव के अन्तःस्थल में है और उसे आध्यात्मिक अभ्युदय के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(दिल्ली मर्केन्टाइल एसोसिएशन के पदाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

उपासना और आचार में सामञ्जस्य जरूरी

आज का मानव जीवन साधारणतया तीन भागों में बांटा जा सकता है—पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु आज मानव-जीवन के तीनों ही पहलू समस्याओं के आवरण में अस्त-व्यस्त से

(जयपुर में एक सार्वजनिक सभा के बीच दिए गए भाषण से)

सुधार आने से

प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि सभी नैतिकता से चलें, मगर केवल मुझे छोड़ कर। यह आत्म-प्रवञ्चना है, नीति का पतन है। सोचना यह चाहिए कि एक व्यक्ति की दूषित भावना का कुप्रभाव निःसन्देह रूप से दूसरों पर पड़ेगा। अतः औरों के लिए सोचने से पूर्व व्यक्ति स्वयं नैतिकता पर चलने का व्रत ले। थोड़े व्यक्ति भी यदि व्रतों की भावना को सही रूप में जीवन में उतार कर चलते हैं तो इसका सुप्रभाव भविष्य में व्यापक रूप से समूचे समाज पर पड़ने वाला है।

प्रत्येक व्यक्ति सुधार चाहता है पर इस शर्त पर कि उस सुधार की पहल दूसरा ही व्यक्ति करे।

युग की मांग समन्वय दृष्टि

परिवर्तन युग की पुकार है। इस युग में जितने महान् परिवर्तन हुए उतने सम्भवतः विगत शताब्दियों में भी नहीं हुए होंगे। लोग कहते हैं कि युग का शम्भुनेत्र राजाओं, जमींदारों व उद्योगपतियों के बाद धर्म पर अपना भ्रू-निक्षेप करने वाला है। वास्तव में आत्मवाद व जड़वाद का संघर्ष आज के युग की सबसे संगीन समस्या है। जड़वाद का बढ़ता हुआ प्रभाव प्रत्येक धर्माचार्यों के लिए गम्भीर विचार का विषय है। "धर्म को मानव जाति के लिये अफीम" बताने वाले पश्चिमी भौतिकवादी विचार आज अध्यात्मवादी पूर्व में भी अपनी प्रभाव-वृद्धि कर रहे हैं। अतः सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के पुजारियों व अहिंसा और सत्य के उपासकों के लिए आज का युग एक महान् चुनौती बनता जा रहा है। खतरा आनेवाला नहीं है, आ गया है। इस संक्रान्ति काल में सर्वधर्म समन्वय की महती आवश्यकता है।

पहल कौन करता है ?

आज के समाज की गतविधि को देख कर ऐसा अनुभव होता है कि ज्यों ज्यों अधिकार चेतना बढ़ती जा रही, कर्त्तव्य भावना न्यूनतम होती जा रही है। समाज में अगर सामञ्जस्य नहीं हो तो उसमें सामाजिकता कहां रहेगी? सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकृतियां और अनैतिक प्रवृत्तियों का प्राबल्य है और ऐसा लगता है कि जैसे आज का समाज विकृतियों की ही एक विराट् श्रृंखला बन गया है। इस श्रृंखला में अनेक कड़ियां हैं और वे सब एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। आज यह विचार करना

[illegible]

(जयपुर में एक सार्वजनिक सभा के बीच दिए गए भाषण से)

सुधार आने से

प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि सभी नैतिकता से चलें, मगर केवल मुझे छोड़ कर। यह आत्म-प्रवञ्चना है, नीति का पतन है। सोचना यह चाहिए कि एक व्यक्ति की दूषित भावना का कुप्रभाव निःसन्देह रूप से दूसरों पर पड़ेगा। अतः औरों के लिए सोचने से पूर्व व्यक्ति स्वयं नैतिकता पर चलने का व्रत ले। थोड़े व्यक्ति भी यदि व्रतों की भावना को सही रूप में जीवन में उतार कर चलते हैं तो इसका सुप्रभाव भविष्य में व्यापक रूप से समूचे समाज पर पड़ने वाला है।

प्रत्येक व्यक्ति सुधार चाहता है पर इस शर्त पर कि उस सुधार की पहल दूसरा ही व्यक्ति करे।

युग की मांग समन्वय दृष्टि

परिवर्तन युग की पुकार है। इस युग में जितने महान् परिवर्तन हुए उतने सम्भवतः विगत शताब्दियों में भी नहीं हुए होंगे। लोग कहते हैं कि युग का शम्भुनेत्र राजाओं, जमींदारों व उद्योगपतियों के बाद धर्म पर अपना भ्रू-निक्षेप करने वाला है। वास्तव में आत्मवाद व जड़वाद का संघर्ष आज के युग की सबसे संगीन समस्या है। जड़वाद का बढ़ता हुआ प्रभाव प्रत्येक धर्माचार्यों के लिए गम्भीर विचार का विषय है। "धर्म को मानव जाति के लिये अफीम" बताने वाले पश्चिमी भौतिकवादी विचार आज अध्यात्मवादी पूर्व में भी अपनी प्रभाव-वृद्धि कर रहे हैं। अतः सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के पुजारियों व अहिंसा और सत्य के उपासकों के लिए आज का युग एक महान् चुनौती बनता जा रहा है। खतरा आनेवाला नहीं है, आ गया है। इस संक्रान्ति काल में सर्वधर्म समन्वय की महती आवश्यकता है।

पहल कौन करता है ?

आज के समाज की गतविधि को देख कर ऐसा अनुभव होता है कि ज्यों ज्यों अधिकार चेतना बढ़ती जा रही, कर्त्तव्य भावना न्यूनतम होती जा रही है। समाज में अगर सामञ्जस्य नहीं हो तो उसमें सामाजिकता कहां रहेगी? सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकृतियां और अनैतिक प्रवत्तियों का प्राबल्य है और ऐसा लगता है कि जैसे आज का समाज विकृतियों की ही एक विराट् श्रंखला बन गया है। इस श्रृंखला में अनेक [illegible]ां हैं और वे सब एक दूसरे से जड़ी हुई हैं। आज यह विचार करना

[illegible] उपासना और आचार। उपासना का [illegible] हो चुका है। आचार से मतलब है कि पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय प्रत्येक प्रवृत्ति में अहिंसा, प्रामाणिकता, सत्य, दया, क्षमा, सन्तोष आदि गुणों का प्रयोग कर चला जाए। आज के धार्मिकों में उपासना का पक्ष प्रबल है, किन्तु आचार का पक्ष नितान्त निर्बल और निष्प्राण हो चुका है। यही आज की समस्याओं का व धर्म के प्रति बढ़ती हुई ग्लानि का एक मात्र कारण है। आज का मनुष्य उपासना गृहों में अत्यन्त धार्मिक और अपने आचार-व्यवहार में एक हिंस-पशु है। आज के धार्मिक अपने आपको धार्मिक कहलाने में गौरव मानते हैं, पर धर्म-क्रियाओं से कोसों दूर हैं। यदि वे अपनी दैनंदिन समस्याओं का समाधान चाहते हैं तो अपनी उपासना और अपने आचार में अवश्य सामञ्जस्य स्थापित करें।

(जयपुर में एक सार्वजनिक सभा के बीच दिए गए भाषण से)

सुधार अपने से

प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि सभी नैतिकता से चलें, मगर केवल मुझे छोड़ कर। यह आत्म-प्रवञ्चना है, नीति का पतन है। सोचना यह चाहिए कि एक व्यक्ति की दूषित भावना का कुप्रभाव निःसन्देह रूप से दूसरों पर पड़ेगा। अतः औरों के लिए सोचने से पूर्व व्यक्ति स्वयं नैतिकता पर चलने का व्रत ले। थोड़े व्यक्ति भी यदि व्रतों की भावना को सही रूप में जीवन में उतार कर चलते हैं तो इसका सुप्रभाव भविष्य में व्यापक रूप से समूचे समाज पर पड़ने वाला है।

प्रत्येक व्यक्ति सुधार चाहता है पर इस शर्त पर कि उस सुधार की पहल दूसरा ही व्यक्ति करे।

युग की मांग समन्वय दृष्टि

परिवर्तन युग की पुकार है। इस युग में जितने महान् परिवर्तन हुए उतने सम्भवतः विगत शताब्दियों में भी नहीं हुए होंगे। लोग कहते हैं कि धन का एकत्रीकरण राजाओं, जमींदारों व उद्योगपतियों के बाद धर्म पर अपना भू-नियंत्रण करने वाला है। वास्तव में आत्मवाद व जड़वाद का संघर्ष आज के युग की सबसे संगीन समस्या है। जड़वाद का बढ़ता हुआ प्रभाव प्रत्येक धर्मात्माओं के लिए गम्भीर विचार का विषय है। "धर्म को मानव जाति के लिये अफीम" बताने वाले पश्चिमी भौतिकवादी विचार आज अध्यात्मवादी पूर्व में भी अपनी प्रभाव-वृद्धि कर रहे हैं। अतः सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के पुजारियों व अहिंसा और सत्य के उपासकों के लिए आज का युग एक महान् चुनौती बनता जा रहा है। सतत सर्वधर्म समन्वय आनेवाला नहीं है, आ गया है। इस अशान्ति काल में सर्वधर्म समन्वय की महती आवश्यकता है।

पहल कौन करता है ?

आज के समाज की गतिविधि को देख कर ऐसा अनुभव होता है कि ज्यों ज्यों अधिकार चेतना बढ़ती जा रही, कर्तव्य भावना न्यूनतम होती जा रही है। समाज में अगर सामञ्जस्य नहीं हो तो उसमें सामाजिकता कहां रहेगी? सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकृतियां और अनैतिक प्रवृत्तियों का प्राबल्य है और ऐसा लगता है कि जैसे आज का समाज विकृतियों की ही एक विराट् श्रृंखला बन गया है। इस श्रृंखला में अनेक कड़ियां हैं और वे सब एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। आज यह विचार करना

(जयपुर में एक सार्वजनिक सभा के बीच दिए गए भाषण से)

सुधार अपने से

प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि सभी नैतिकता से चलें, मगर केवल मुझे छोड़ कर। यह आत्म-प्रवञ्चना है, नीति का पतन है। सोचना यह चाहिए कि एक व्यक्ति की दूषित भावना का कुप्रभाव निःसन्देह रूप से दूसरों पर पड़ेगा। अतः औरों के लिए सोचने से पूर्व व्यक्ति स्वयं नैतिकता पर चलने का व्रत ले। थोड़े व्यक्ति भी यदि व्रतों की भावना को सही रूप में जीवन में उतार कर चलते हैं तो इसका सुप्रभाव भविष्य में व्यापक रूप से समूचे समाज पर पड़ने वाला है।

प्रत्येक व्यक्ति सुधार चाहता है पर इस बात पर कि इस सुधार की पहल दूसरा ही व्यक्ति करे।

युग की मांग समन्वय दृष्टि

परिवर्तन युग की पुकार है। इस युग में जितने महान् परिवर्तन हुए उतने सम्भवतः पिछली शताब्दियों में भी नहीं हुए होंगे। लोग कहते हैं कि अब का उन्मूलन राजाओं, जमींदारों व उद्योगपतियों के बाद धर्म पर अपना भू-निर्धार करने वाला है। वास्तव में आत्मवाद व जड़वाद का संघर्ष आज के युग की सबसे संगीन समस्या है। जड़वाद का बढ़ता हुआ प्रभाव प्रत्येक धर्माचार्यों के लिए गम्भीर विचार का विषय है। "धर्म को मानव जाति के लिये अफीम" बताने वाले पश्चिमी भौतिकवादी विचार आज अध्यात्मवादी पूर्व में भी अपनी प्रभाव-वृद्धि कर रहे हैं। अतः सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के पुजारियों व अहिंसा और सत्य के उपासकों के लिए आज का युग एक महान् चुनौती बनता जा रहा है। खतरा आनेवाला नहीं है, आ गया है। इस संक्रान्ति काल में सर्वधर्म समन्वय की महती आवश्यकता है।

पहल कौन करता है ?

आज के समाज की गतिविधि को देख कर ऐसा अनुभव होता है कि ज्यों ज्यों अधिकार चेतना बढ़ती जा रही, कर्तव्य भावना न्यूनतम होती जा रही है। समाज में अगर सामञ्जस्य नहीं हो तो उसमें सामाजिकता कहां रहेगी? सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकृतियों और अनैतिक प्रवृत्तियों का प्राबल्य है और ऐसा लगता है कि जैसे आज का समाज विकृतियों की ही एक विराट् शृंखला बन गया है। इस शृंखला में अनेक हैं और वे सब एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। आज यह विचार करना

सांस्कृतिक विनिमय में सजगता अपेक्षित

प्रस्तुत युग में विभिन्न संस्कृतियों का संघर्ष हो रहा है। पाश्चात्य संस्कृति, पौर्वात्य संस्कृति को अपना कर छा जाना चाहती है। भारतीयों को इस स्थिति में अत्यन्त जागरूकता से काम लेना होगा। जहां भारतीय संस्कृति "मित्ति मे सव्व भूएसु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श उपस्थित करती है, वहां तथाकथित नवोदित संस्कृतियां टिड्डियों को मारो, बन्दरों को मारो, जो मनुष्य के काम के नहीं या उसकी सुख सुविधा में बाधा डालते हैं उन सबको मारो, यह सिखलाती है। जहां भारतीय संस्कृति "मातृवत् परदारेषु" के आदर्श पर जोर देती है, वहां पाश्चात्य संस्कृति वासनापूर्ति को एक शरीर का धर्म मानती है। भारतीय संस्कृति जहां अपरिग्रह के आदर्श पर चलती है, पाश्चात्य संस्कृति "स्टैण्डर्ड ऑफ लीविंग" को ऊंचा करने पर जोर देती है। ऐसी स्थिति में यदि भारतीय अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के विनिमय में कुछ भी अपनाएंगे तो वे सरासर घाटे के सौदे में रहेंगे।

दोष से दोष ही उत्पन्न होता है

समाज में संस्कृति के साथ विकृति सदा मिली रहती है। चोर और साहुकार एक साथ रहते हैं। समाज पर असंस्कारी तत्त्व अधिक न छा

सांस्कृतिक विनिमय में सजगता अपेक्षित

प्रस्तुत युग में विभिन्न संस्कृतियों का संगम हो रहा है। पाश्चात्य संस्कृति, पौर्वात्य संस्कृति को अपने पर छा जाना चाहती है। भारतीयों को इस स्थिति में अत्यन्त जागरूकता से काम लेना होगा। जहां भारतीय संस्कृति "मित्ति मे सव्व भूएसु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श उपस्थित करती है, वहां तथाकथित नवोदित संस्कृतियां टिड्डियों को मारो, बन्दरों को मारो, जो मनुष्य के काम के नहीं या उसकी सुख सुविधा में बाधा डालते हैं उन सबको मारो, यह सिखलाती है। जहां भारतीय संस्कृति "मातृवत् परदारेषु" के आदर्श पर जोर देती है, वहां पाश्चात्य संस्कृति वासनापूर्ति को एक शरीर का धर्म मानती है। भारतीय संस्कृति जहां अपरिग्रह के आदर्श पर चलती है, पाश्चात्य संस्कृति "स्टैण्डर्ड ऑफ लीविंग" को ऊंचा करने पर जोर देती है। ऐसी स्थिति में यदि भारतीय अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के विनिमय में कुछ भी अपनाएंगे तो वे सरासर घाटे के सौदे में रहेंगे।

दोष से दोष ही उत्पन्न होता है

समाज में संस्कृति के साथ विकृति सदा मिली रहती है। चोर और साहुकार एक साथ रहते हैं। समाज पर असंस्कारी तत्त्व अधिक न छा

[illegible] प्रगतिशील

आज भारत जैसे विकासशील [illegible] देशों के [illegible]
[illegible] से पतन हो जाता तो [illegible] होती है। [illegible] व्यापार
[illegible] एक महत्त्वपूर्ण [illegible] है और [illegible]
सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। [illegible] आज
[illegible] हो गया है कि किसी भी राष्ट्र का [illegible] परिणाम
की ओर [illegible] में अनैतिक प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर रहे।

पापाचार से बचना ही सही सुधार

यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि अनैतिक उपायों से व्यापार की विशेष अभिवृद्धि होती है। इसके प्रतिकूल आज हम देख रहे हैं कि अनैतिक प्रवृत्तियों के कारण व्यापारी जगत् में भारत की प्रतिष्ठा में चिन्तनीय क्षति हुई है। व्यापारी कानून के भय से चोरबाजारी और मुनाफाखोरी से बचने को बाध्य होते हैं परन्तु इसमें उनका आत्माभिमान और गौरव कहां रह जाता है? अगर वे अपनी आत्मा के भय से अनैतिक प्रवृत्तियों से बचने का प्रयत्न करें तो कानून की मंशा भी पूरी हो जाती है और उनका आत्मिक अभ्युदय भी होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में अगर अपने आपको पापाचार से बचाने की दृष्टि प्रधान रहे तो अन्य उद्देश्य तो स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं।

संघर्ष का कारण अर्थवाद

आज के सामाजिक जीवन में चारों ओर अनैतिकता का बोल बाला है अर्थ का अनर्थकारी प्रभाव जन-जीवन के अंग अंग में व्याप्त हो गया है। किसी युग में समाज का कार्य पारस्परिक सहयोग और वस्तु विनिमय के द्वारा चल जाया करता था, परन्तु धीरे धीरे रुपया विनिमय का मा[illegible] बनता गया। रुपये में मूल्य का आरोप मानव ने ही किया था, परन्त उ[illegible]

रुपया मानवीय आदर्शों और भावनाओं के साथ मनमाना खिलवाड़ कर रहा है। इस अर्थवाद के कारण ही समाज में सहयोग के स्थान पर विरोध और समन्वय के स्थान पर संघर्ष का प्राधान्य हो गया है।

जब तक समाज में अर्थवाद का प्रभुत्व रहेगा और रुपया ही मानव के सम्मान का मापदण्ड रहेगा नैतिकता का भविष्य संदिग्ध प्रतीत होता है। मनुष्य को रुपये के मायाजाल से निकल कर अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करना है। जितना समय और शक्ति अणु की खोज करने में लगाया गया उसका सहस्रांश भी अगर आत्मा की खोज करने में लगाया जाता तो इस भयंकर विध्वंस के स्थान पर नव निर्माण के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हो गया होता।

दण्ड व्यवस्थाओं का बढ़ना नैतिक पतन का सूचक

जैन पुराणों में ऐसा प्रसंग आया है कि एक समय था जब समाज में शूली, फांसी व कारावास की सजाएं नहीं थी। अपराधी को सभा में खड़ा कर, 'हा! तुमने ऐसा किया?' केवल यह कह दिया जाता था। बहुत वर्षों तक 'हाकार नीति' से समाज-व्यवस्था चलती रही। जब मनुष्य इस दण्ड का आदी हो गया तो 'माकार' 'ऐसा मत करना' इस नीति से काम चला। इसे भी जब मनुष्य लांघ गया तो 'धिक्कार नीति' का आविर्भाव हुआ। पर इसके बाद तो क्रमशः कारावास, शूली, फांसी आदि की व्यवस्थाएं आती ही गयीं। दण्ड व्यवस्थाओं का अधिकाधिक बढ़ना मनुष्य के पतन का सूचक है। मनुष्य अच्छा होता जाएगा दण्ड व्यवस्थाएं अल्प होती जाएंगी।

(दिल्ली जिला जेल में दिए गए भाषण से)

वाक् संयम

भारतीय ऋषि-महर्षियों ने तीन प्रकार के संयम बतलाये हैं— मनःसंयम, वाक् संयम, और काय संयम। वाक् संयम तीनों में बीच का

पापाचार से बचना ही सही सुधार

यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि अनैतिक उपायों से व्यापार की विशेष अभिवृद्धि होती है। इसके प्रतिकूल आज हम देख रहे हैं कि अनैतिक प्रवृत्तियों के कारण व्यापारी जगत् में भारत की प्रतिष्ठा में चिन्तनीय क्षति हुई है। व्यापारी कानून के भय से चोरबाजारी और मुनाफाखोरी से बचने को बाध्य होते हैं परन्तु इसमें उनका आत्माभिमान और गौरव कहां रह जाता है? अगर वे अपनी आत्मा के भय से अनैतिक प्रवृत्तियों से बचने का प्रयत्न करें तो कानून की मंशा भी पूरी हो जाती है और उनका आत्मिक अभ्युदय भी होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में अगर अपने आपको पापाचार से बचाने की दृष्टि प्रधान रहे तो अन्य उद्देश्य तो स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं।

संघर्ष का कारण अर्थवाद

आज के सामाजिक जीवन में चारों ओर अनैतिकता का बोल बाला है अर्थ का अनर्थकारी प्रभाव जन-जीवन के अंग अंग में व्याप्त हो गया है। किसी युग में समाज का कार्य पारस्परिक सहयोग और वस्तु विनिमय के द्वारा चल जाया करता था, परन्तु धीरे धीरे रुपया विनिमय का माध्यम बनता गया। रुपये में मूल्य का आरोप मानव ने ही किया था, परन्तु आज

रुपया मानवीय आदर्शों और भावनाओं के साथ मनमाना खिलवाड़ कर रहा है। इस अर्थवाद के कारण ही समाज में सहयोग के स्थान पर विरोध और समन्वय के स्थान पर संघर्ष का प्राधान्य हो गया है।

जब तक समाज में अर्थवाद का प्राबल्य रहेगा और रुपया ही मानव के सम्मान का मापदण्ड रहेगा नैतिकता का भविष्य संदिग्ध प्रतीत होता है। मनुष्य को रुपये के मायाजाल से निकल कर अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करना है। जितना समय और शक्ति अणु की खोज करने में लगाया गया उसका सहस्रांश भी अगर आत्मा की खोज करने में लगाया जाता तो इन भयंकर विध्वंस के स्थान पर नव निर्माण के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हो गया होता।

दण्ड व्यवस्थाओं का बढ़ना नैतिक पतन का सूचक

जैन पुराणों में ऐसा प्रसंग आया है कि एक समय था जब समाज में शूली, फांसी व कारावास की सजाएं नहीं थी। अपराधी को सभा में खड़ा कर, 'हा! तुमने ऐसा किया?' केवल यह कह दिया जाता था। बहुत वर्षों तक 'हाकार नीति' से समाज-व्यवस्था चलती रही। जब मनुष्य इस दण्ड का आदी हो गया तो 'माकार' 'ऐसा मत करना' इस नीति से काम चला। इसे भी जब मनुष्य लांघ गया तो 'धिक्कार नीति' का आविर्भाव हुआ। पर इसके बाद तो क्रमशः कारावास, शूली, फांसी आदि की व्यवस्थाएं आती ही गयीं। दण्ड व्यवस्थाओं का अधिकाधिक बढ़ना मनुष्य के पतन का सूचक है। मनुष्य अच्छा होता जाएगा दण्ड व्यवस्थाएं अल्प होती जाएंगी। (दिल्ली जिला जेल में दिए गए भाषण से)

वाक् संयम

भारतीय ऋषि-महर्षियों ने तीन प्रकार के संयम बतलाये हैं—मनःसंयम, वाक् संयम, और काय संयम। वाक् संयम तीनों में बीच का

आज भारत जैसे विशाल जनतन्त्रीय देश में केवल कुछ चोटी के व्यक्तियों का नैतिक दृष्टि से पवित्र हो जाना ही पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति आज अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण इकाई है और उसके गुणावगुण का गुरुतर सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसलिए आज तो यह अत्यावश्यक हो गया है कि किसी भी राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति चरित्रवान् हो और अपने लोक-व्यवहार में अनैतिक प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर रहे।

पापाचार से बचना ही सही सुधार

यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि अनैतिक उपायों से व्यापार की विशेष अभिवृद्धि होती है। इसके प्रतिकूल आज हम देख रहे हैं कि अनैतिक प्रवृत्तियों के कारण व्यापारी जगत् में भारत की प्रतिष्ठा में चिन्तनीय क्षति हुई है। व्यापारी कानून के भय से चोरबाजारी और मुनाफाखोरी से बचने को बाध्य होते हैं परन्तु इसमें उनका आत्माभिमान और गौरव कहां रह जाता है? अगर वे अपनी आत्मा के भय से अनैतिक प्रवृत्तियों से बचने का प्रयत्न करें तो कानून की मंशा भी पूरी हो जाती है और उनका आत्मिक अभ्युदय भी होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में अगर अपने आपको पापाचार से बचाने की दृष्टि प्रधान रहे तो अन्य उद्देश्य तो स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं।

संघर्ष का कारण अर्थवाद

आज के सामाजिक जीवन में चारों ओर अनैतिकता का बोल बाला है अर्थ का अनर्थकारी प्रभाव जन-जीवन के अंग अंग में व्याप्त हो गया है। किसी युग में समाज का कार्य पारस्परिक सहयोग और वस्तु विनमय के द्वारा चल जाया करता था, परन्तु धीरे धीरे रुपया विनिमय का माध्यम बनता गया। रुपये में मूल्य का आरोप मानव ने ही किया था, परन्त आज

तथा मानवीय आदर्शों और भावनाओं के साथ मनमाना खिलवाड़ कर रहा है। इस अर्थवाद के कारण ही समाज में सहयोग के स्थान पर विरोध और समन्वय के स्थान पर संघर्ष का प्राधान्य हो गया है।

जब तक समाज में अर्थवाद का प्रभुत्व रहेगा और रुपया ही मानव के सम्मान का मापदण्ड रहेगा नैतिकता का भविष्य संदिग्ध प्रतीत होता है। मनुष्य को रुपये के मायाजाल से निकल कर अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करना है। जितना समय और शक्ति अणु की खोज करने में लगाया गया उसका सहस्रांश भी अगर आत्मा की खोज करने में लगाया जाता तो इस भयंकर विध्वंस के स्थान पर नव निर्माण के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हो गया होता।

दण्ड व्यवस्थाओं का बढ़ना नैतिक पतन का सूचक

जैन पुराणों में ऐसा प्रसंग आया है कि एक समय था जब समाज में शूली, फांसी व कारावास की सजाएं नहीं थीं। अपराधी को सभा में खड़ा कर, 'हा! तुमने ऐसा किया?' केवल यह कह दिया जाता था। बहुत वर्षों तक 'हाकार नीति' से समाज-व्यवस्था चलती रही। जब मनुष्य इस दण्ड का आदी हो गया तो 'माकार' 'ऐसा मत करना' इस नीति से काम चला। इसे भी जब मनुष्य लांघ गया तो 'धिक्कार नीति' का आविर्भाव हुआ। पर इनके बाद तो क्रमशः कारावास, शूली, फांसी आदि की व्यवस्थाएं आती ही गयीं। दण्ड व्यवस्थाओं का अधिकाधिक बढ़ना मनुष्य के पतन का सूचक है। मनुष्य अच्छा होता जाएगा दण्ड व्यवस्थाएं अल्प होती जाएंगी।

(दिल्ली जिला जेल में दिए गए भाषण से)

वाक् संयम

भारतीय ऋषि-महर्षियों ने तीन प्रकार के संयम बतलाये हैं— मनःसंयम, वाक् संयम, और काय संयम। वाक् संयम तीनों में बीच का

आज भारत जैसे विशाल जनतन्त्रीय देश में केवल कुछ चोटी के व्यक्तियों का नैतिक दृष्टि से पवित्र हो जाना ही पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति आज अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण इकाई है और उसके गुणावगुण का बृहत्तर सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसलिए आज तो यह अत्यावश्यक हो गया है कि किसी भी राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति चरित्रवान् हो और अपने लोक-व्यवहार में अनैतिक प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर रहे।

पापाचार से बचना ही सही सुधार

यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि अनैतिक उपायों से व्यापार की विशेष अभिवृद्धि होती है। इसके प्रतिकूल आज हम देख रहे हैं कि अनैतिक प्रवृत्तियों के कारण व्यापारी जगत् में भारत की प्रतिष्ठा में चिन्तनीय क्षति हुई है। व्यापारी कानून के भय से चोरबाजारी और मुनाफाखोरी से बचने को बाध्य होते हैं परन्तु इसमें उनका आत्माभिमान और गौरव कहां रह जाता है? अगर वे अपनी आत्मा के भय से अनैतिक प्रवृत्तियों से बचने का प्रयत्न करें तो कानून की मंशा भी पूरी हो जाती है और उनका आत्मिक अभ्युदय भी होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में अगर अपने आपको पापाचार से बचाने की दृष्टि प्रधान रहे तो अन्य उद्देश्य तो स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं।

संघर्ष का कारण अर्थवाद

आज के सामाजिक जीवन में चारों ओर अनैतिकता का बोल बाला है अर्थ का अतर्क्यकारी प्रभाव जन-जीवन के अंग अंग में व्याप्त हो गया है। किसी युग में समाज का कार्य पारस्परिक सहयोग और वस्तु विनिमय के द्वारा चल जाया करता था, परन्तु धीरे धीरे रुपया विनिमय का माध्यम बनता गया। रुपये में मूल्य का आरोप मानव ने ही किया था, परन्त आज

रुपया मानवीय आदर्शों और भावनाओं के साथ मनमाना खिलवाड़ कर रहा है। इस अर्थवाद के कारण ही समाज में सहयोग के स्थान पर विरोध और समन्वय के स्थान पर संघर्ष का प्राधान्य हो गया है।

जब तक समाज में अर्थवाद का प्रभुत्व रहेगा और रुपया ही मानव के सम्मान का मापदण्ड रहेगा नैतिकता का भविष्य संदिग्ध प्रतीत होता है। मनुष्य को रुपये के मायाजाल से निकल कर अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करना है। जितना समय और शक्ति अणु की खोज करने में लगाया गया उसका सहस्रांश भी अगर आत्मा की खोज करने में लगाया जाता तो इस भयंकर विध्वंस के स्थान पर नव निर्माण के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हो गया होता।

दण्ड व्यवस्थाओं का बढ़ना नैतिक पतन का सूचक

जैन पुराणों में ऐसा प्रसंग आया है कि एक समय था जब समाज में शूली, फांसी व कारावास की सजाएं नहीं थी। अपराधी को सभा में खड़ा कर, 'हा ! तुमने ऐसा किया ?' केवल यह कह दिया जाता था। बहुत वर्षों तक 'हाकार नीति' से समाज-व्यवस्था चलती रही। जब मनुष्य इस दण्ड का आदी हो गया तो 'माकार' 'ऐसा मत करना' इस नीति से काम चला। इसे भी जब मनुष्य लांघ गया तो 'धिक्कार नीति' का आविर्भाव हुआ। पर इनके बाद तो क्रमशः कारावास, शूली, फांसी आदि की व्यवस्थाएं आती ही गयीं। दण्ड व्यवस्थाओं का अधिकाधिक बढ़ना मनुष्य के पतन का सूचक है। मनुष्य अच्छा होता जाएगा दण्ड व्यवस्थाएं अल्प होती जाएंगी। (दिल्ली जिला जेल में दिए गए भाषण से)

वाक् संयम

भारतीय ऋषि-महर्षियों ने तीन प्रकार के संयम बतलाये हैं— मनःसंयम, वाक् संयम, और काय संयम। वाक् संयम तीनों में बीच का

[illegible]

आवश्यकता भर सकती है पर आशा नहीं

धर्म वृक्ष है और नैतिकता उसका फल है। पर लगता है धर्म वृक्ष के नैतिकता रूपी फल सारे झड़ चुके हैं। इसलिए आज धर्म सूखा और नीरस है। भारतवर्ष का बच्चा भी दर्शन, धर्म व आत्मा-परमात्मा की गहरी बातें करता है। पर भारतवासियों के जीवन व्यवहार में "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" का चरितार्थ रूप देखा जाता है। लाखों करोड़ों मनुष्य चाय पीते हैं पर क्या उन्हें यह मालूम है कि चाय नकली है, दूध पानी मिला है और चीनी सेक्रिन है। जांच के पश्चात देहली नगरपालिका ने हाल ही में ऐसे बहुत सारे आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। यह सब क्यों होता है? इसीलिए न कि मनुष्य का मनोभाव नितान्त अर्थवादी हो चला है। संसार में पदार्थ का अभाव नहीं है। हर एक की आवश्यकता भर सकती है पर आशाएं नहीं।

(रिजर्व बैंक आफ इंडिया के उच्चाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

अर्थ-लालसा का व्यामोह दूर हो

आज का मानव अर्थ-पिपासा की चक्की में बुरी तरह पिस रहा है। धन की सतृष्ण लालसा मानवता के मूलाधारों को ही बुरी तरह से झकझोर रही है। अनर्थों की जड़ यह अर्थ स्वयं मानव निर्मित बाधा है जो आज उसके सर पर चढ़ कर बोल रही है। पुरातन इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि स्वयं मानव ने अपनी सुख-सुविधा के संचालन के लिए ही मुद्रा का परिचालन किया था। स्वाभाविक तो यह था कि मानव अर्थ का प्रभाव न बढ़ने देता। पर आज तो इसमे ठीक विपरीत मानव स्वयं अर्थलिप्सा का क्रीत दास ही बन बैठा है। उसके लिए आवश्यक है कि अर्थ का दास न बन कर "पुनर्मूषिको भव" जैसे किसी मन्त्र द्वारा अर्थ-लालसा का व्यामोह दूर करे। इसका एक मात्र सरल मार्ग है—अर्थ संग्रह की दूषित मनोवृत्ति में आन्तरिक अनासक्ति जिसे दूसरे शब्दों में "अपरिग्रहवाद" कहा जाता है, को प्रमुख स्थान दिया जाना।

समय व बुद्धि का दुरुपयोग न हो

आज जहां अन्य लोग राजनीति, विज्ञान व व्यवसाय के विकास में लगे हैं; वहां भारतवर्ष के बहुत सारे लोग ठगी, मायाचार व धोखादेही के विकास में लगे हैं। उनके समय व बुद्धि का उपयोग इन बातों में होता है कि हम कौनसे पदार्थ में कौनसा विजातीय पदार्थ मिलाकर बाजार में चला सकते हैं। आज बाजारों में सैकड़ों गुर मिलावट के आविष्कृत हो चुके हैं, जो वास्तव में एक से एक अधिक घृणास्पद तथा

[illegible]

आवश्यकता भर सकती है पर आशा नहीं

धर्म वृक्ष है और नैतिकता उसका फल है। पर लगता है धर्म वृक्ष के नैतिकता रूपी फल सारे झड़ चुके हैं। इसलिए आज धर्म सूखा और नीरस है। भारतवर्ष का बच्चा भी दर्शन, धर्म व आत्मा-परमात्मा की गहरी बातें करता है। पर भारतवासियों के जीवन व्यवहार में "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" का चरितार्थ रूप देखा जाता है। लाखों करोड़ों मनुष्य चाय पीते हैं पर क्या उन्हें यह मालूम है कि चाय नकली है, दूध पानी मिला है और चीनी सेक्रिन है। जांच के पश्चात देहली नगरपालिका ने हाल ही में ऐसे बहुत सारे आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। यह सब क्यों होता है? इसीलिए न कि मनुष्य का मनोभाव नितान्त अर्थवादी हो चला है। संसार में पदार्थ का अभाव नहीं है। हर एक की आवश्यकता भर सकती है पर आशाएं नहीं।

(रिजर्व बैंक आफ इंडिया के उच्चाधिकारियों के बीच दिए गए भाषण से)

अर्थ-लालसा का व्यामोह दूर हो

आज का मानव अर्थ-पिपासा की चक्की में बुरी तरह पिस रहा है। धन की मतृष्ण लालसा मानवता के मूलाचारों को ही बुरी तरह से झकझोर रही है। अनर्थों की जड़ यह अर्थ स्वयं मानव निर्मित बाधा है जो आज उसके सर पर चढ़ कर बोल रही है। पुरातन इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि स्वयं मानव ने अपनी सुख-सुविधा के संचालन के लिए ही मुद्रा का परिचालन किया था। स्वाभाविक तो यह था कि मानव अर्थ का प्रभाव न बढ़ने देता। पर आज तो इससे ठीक विपरीत मानव स्वयं अर्थलिप्सा का क्रीत दास ही बन बैठा है। उसके लिए आवश्यक है कि अर्थ का दास न बन कर "पुनर्मूषिको भव" जैसे किसी मन्त्र द्वारा अर्थ-लालसा का व्यामोह दूर करे। इसका एक मात्र सरल मार्ग है—अर्थ संग्रह की दूषित मनोवृत्ति से आन्तरिक अनासक्ति जिसे दूसरे शब्दों में "अपरिग्रहवाद" कहा जाता है, को प्रमुख स्थान दिया जाना।

समय व बुद्धि का दुरुपयोग न हो

आज जहां अन्य लोग राजनीति, विज्ञान व व्यवसाय के विकास में लगे हैं, वहा भारतवर्ष के बहुत सारे लोग ठगी, मायाचार व धोखादेही के विकास में लगे हैं। उनके समय व बुद्धि का उपयोग इन बातों में होता है कि हम कौनसे पदार्थ में कौनसा विजातीय पदार्थ मिलाकर बाजार में चला सकते हैं। आज बाजारों में सकड़ों गुर मिलावट के आविष्कृत हो चुके हैं, जो वास्तव में एक से एक अधिक घृणास्पद तथा

आश्चर्यजनक है। इसी प्रकार कहीं झूठे तोल-माप के तरीके खोजे जा रहे हैं तो कहीं रिश्वत लेने के। यह सब बुद्धि व समय का दुरुपयोग है।

मनुष्यत्व का संरक्षण ही मूल पून्जी

मनुष्य की मूल पूंजी—मनुष्यत्व है। जो मनुष्य अपने मनुष्यत्व को सुरक्षित रखता है वह उस व्यापारी की तरह है जो अपने व्यापार में न तो कुछ कमाता है और न कुछ खोता है। जिस प्रकार कुछ व्यापारी अपनी मूल पूंजी को सुरक्षित रखते हुए लाखों रुपयों का लाभ कर लेते हैं उसी प्रकार धार्मिक मनुष्य अपने मनुष्यत्व को कायम रखते हुए अपने आप में दैवी गुणों का विकास कर लेते हैं। परन्तु जो लोग अपने मनुष्यत्व की मूल पूंजी को ही गंवा कर आसुरी प्रवृत्तियों को अपना लेते हैं, वे उन दिवालिए व्यापारियों की तरह हैं, जो अपना सर्वस्व लुटा बैठते हैं।

स्वार्थ ही दुःख का कारण

यह संसार समुद्र के समान है और मनुष्य इसमें यात्रा करने वाला नाविक है। कुशल नाविक अपनी जीवन नौका को भवोदधि में उठने वाले ज्वार-भाटों और भंवरों से पार कर जाता है और असावधान नाविक अपनी जीवन नौका को खतरे में डाल देता है। मनुष्य अपराध को जानता हुआ भी स्वार्थ के वश में होकर उसको करता है। वह परवाने की तरह दीपक की भौतिक चकाचौंध में अपने आपको मिटा देता है। वह लालच और स्वार्थ के वश में इन्सानियत और धर्म का बलिदान कर देता है। इसीलिए स्वार्थ ही दुःख का कारण है। समाज में यदि कुछ व्यक्ति बुरा कार्य करेंगे तो दूसरे व्यक्ति उसका विरोध कर सकते हैं। परन्तु जहां बहुमत ही बुरा कर्म करते हों, वहां दूसरा कौन उन पर अंगुली उठा सकता है।

आश्चर्यजनक है। इसी प्रकार कहीं झूठे तोल-माप के तरीके खोजे जा रहे हैं तो कहीं रिश्वत लेने के। यह सब बुद्धि व समय का दुरुपयोग है।

मनुष्यत्व का संरक्षण ही मूल पूञ्जी

मनुष्य की मूल पूंजी---मनुष्यत्व है। जो मनुष्य अपने मनुष्यत्व को सुरक्षित रखता है वह उस व्यापारी की तरह है जो अपने व्यापार में न तो कुछ कमाता है और न कुछ खोता है। जिस प्रकार कुछ व्यापारी अपनी मूल पूंजी को सुरक्षित रखते हुए लाखों रुपयों का लाभ कर लेते हैं उसी प्रकार धार्मिक मनुष्य अपने मनुष्यत्व को कायम रखते हुए अपने आप में दैवी गुणों का विकास कर लेते हैं। परन्तु जो लोग अपने मनुष्यत्व की मूल पूंजी को ही गंवा कर आसुरी प्रवृत्तियों को अपना लेते हैं, वे उन दिवालिए व्यापारियों की तरह हैं, जो अपना सर्वस्व लुटा बैठते हैं।

स्वार्थ ही दुःख का कारण

यह संसार समुद्र के समान है और मनुष्य इसमें यात्रा करने वाला नाविक है। कुशल नाविक अपनी जीवन नौका को भवोदधि में उठने वाले ज्वार-भाटों और भंवरों से पार कर जाता है और असावधान नाविक अपनी जीवन नौका को खतरे में डाल देता है। मनुष्य अपराध को जानता हुआ भी स्वार्थ के वश में होकर उसको करता है। वह परवाने की तरह दीपक की भौतिक चकाचौंध में अपने आपको मिटा देता है। वह लालच और स्वार्थ के वश में इन्सानियत और धर्म का बलिदान कर देता है। इसीलिए स्वार्थ ही दुःख का कारण है। समाज में यदि कुछ व्यक्ति बुरा कार्य करेंगे तो दूसरे व्यक्ति उसका विरोध कर सकते हैं। परन्तु जहां बहुमत ही बुरा कर्म करते हों, वहां दूसरा कौन उन पर अंगुली उठा सकता है।

और भी कोई अपेक्षा या दृष्टि होगी जिससे किसी दूसरे का देखा हुआ सत्य भी सत्य हो सकता है। क्योंकि सत्य खोज का विषय है दुराग्रह का नहीं।

किसी दार्शनिक ने कहा—संसार में जो कुछ हम देख रहे हैं वह अनादि काल से चला आ रहा है। इसलिए यह निश्चित है कि संसार नित्य है। दूसरा बोला—संसार में जिसे हमने अब देखा, दूसरे क्षण वह कहां रह पाता है, वह तो मिट जाता है। तब संसार नित्य कहां ठहरा? वह तो एकान्त रूप में अनित्य है। यह चिन्तन का भेद संघर्ष और वितण्डावाद की कोटि में पहुंच जाता है। जैन दर्शन ने वहां बताया—प्रत्येक वस्तु में अनेकों धर्म, गुण व स्वभाव रहते हैं। उसके किसी एक गुण या विशेषता को पकड़ कर उसका एकान्तिक निरूपण ठीक नहीं होता, अतः संसार नित्य भी है और अनित्य भी। मूल स्वरूप से वह कभी मिटता नहीं, इसलिए नित्य है। पर उसके पर्याय, उसकी अवस्थाएं बदलती रहती हैं, इस दृष्टि से वह अनित्य है। इसमें संघर्ष कैसा। दृष्टिभेद से दोनों तथ्य हैं। अतएव वस्तु की अनेक धर्मात्मकता दृष्टि में रखी जानी आवश्यक है। यही जैन दर्शन का स्याद्वाद है।

(दिल्ली में भारत जैन महा-मण्डल द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

कर्म के बिना ज्ञान कोरा पाण्डित्य है

जीवन का प्रथम लक्ष्य है ज्ञान प्राप्त करना। भारतीय संस्कृति में ज्ञान को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। ऋषि-महर्षियों ने तो यहां तक कहा है कि उसके बिना जीवन शून्य है। महावीर स्वामी ने कहा था कि ज्ञान जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार धागे वाली सूई

और भी कोई अपेक्षा या दृष्टि होगी जिससे किसी दूसरे का देखा हुआ सत्य भी सत्य हो सकता है। क्योंकि सत्य खोज का विषय है दुराग्रह का नहीं।

किसी दार्शनिक ने कहा—संसार में जो कुछ हम देख रहे हैं वह अनादि काल से चला आ रहा है। इसलिए यह निश्चित है कि संसार नित्य है। दूसरा बोला—संसार में जिसे हमने अब देखा, दूसरे क्षण वह कहां रह पाता है, वह तो मिट जाता है। तब संसार नित्य कहां ठहरा? वह तो एकान्त रूप में अनित्य है। यह चिन्तन का भेद संघर्ष और वितण्डावाद की कोटि में पहुंच जाता है। जैन दर्शन ने वहां बताया—प्रत्येक वस्तु में अनेकों धर्म, गुण व स्वभाव रहते हैं। उसके किसी एक गुण या विशेषता को पकड़ कर उसका एकान्तिक निरूपण ठीक नहीं होता, अतः संसार नित्य भी है और अनित्य भी। मूल स्वरूप से वह कभी मिटता नहीं, इसलिए नित्य है। पर उसके पर्याय, उसकी अवस्थाएं बदलती रहती हैं, इस दृष्टि से वह अनित्य है। इसमें संघर्ष कैसा। दृष्टिभेद से दोनों तथ्य हैं। अतएव वस्तु की अनेक धर्मात्मकता दृष्टि में रखी जानी आवश्यक है। यही जैन दर्शन का स्याद्वाद है।

(दिल्ली में भारत जैन महा-मण्डल द्वारा आयोजित सभा में दिए गए भाषण से)

कर्म के बिना ज्ञान कोरा पाण्डित्य है

जीवन का प्रथम लक्ष्य है ज्ञान प्राप्त करना। भारतीय संस्कृति में ज्ञान को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। ऋषि-महर्षियों ने तो यहां तक कहा है कि उसके बिना जीवन शून्य है। महावीर स्वामी ने कहा था कि ज्ञान जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार धागे वाली सूई

हृद से गिर जाने पर भी खिल जाती है उसी प्रकार ज्ञानवान् व्यक्ति नाना प्रकार के प्रवाहों में पड़ कर भी बह नहीं जाता। वह अपने ज्ञानदर्शन विवेक से अपनी मस्तिष्क की दिशा में अपार शक्ति से बढ़ता ही जाता है। कर्म के बिना ज्ञान होना पाखण्ड है। जिस व्यक्ति में ज्ञान तो है किन्तु कर्मनिष्ठता नहीं है तो उसे कभी भी अच्छा व्यक्ति नहीं कहा जाता। जिस प्रकार पानी से नमक, नमक से पानी सुस्वादित होता है और दोनों के संयोग से आहार सुशोभित होता है, उसी प्रकार ज्ञान से कर्म तथा कर्म से ज्ञान और दोनों के संयोग से जीवन उज्ज्वल और सुन्दर बनता है।

(महिला शिक्षा-सदन हटूण्डी (अजमेर) में दिए गए भाषण से)

संयम संतति-निरोध का सहज उपाय

सामाजिक कर्णधारों के सामने बढ़ती हुई जन-गणना एक समस्या बन चुकी है। गणित शास्त्री बताते हैं कि विगत १९५३ में प्रति दिन ७० हजार और प्रति वर्ष ३० करोड़ मनुष्यों की वृद्धि हुई। वे कहते हैं कि यह गणना यदि इसी प्रकार से बढ़ती गई तो अन्न, वस्त्र, स्थान विशेष को लेकर नाना संकट खड़े हो जाएंगे। इस विषय में नाना उपाय सोचे जा रहे हैं। उनमें कुछ उपाय तो प्रकृति से ही बहुत परे रह जाते हैं और बहुत से अस्वाभाविक और भयानक हैं। संतति निरोध का सही और मानवीय उपाय संयम ही है। संयम से संतति-निरोध के साथ साथ और भी नैतिक और बौद्धिक शक्तियों का समाज में विस्तार होगा। संतति-निरोध के कृत्रिम उपायों से मानव की अतृप्त वासनाओं को और भी एक सहारा मिलेगा।

मद्यपान बुराइयों का केन्द्र

भारतीय संस्कृति में मद्यपान सात दुर्व्यसनों में से एक दुर्व्यसन माना

वसर पर

गया है। व्यसन का अर्थ है जो एक बार लग जाने पर छूटना दूभर हो जाता है। देखा गया है कि इस व्यसन के कारण इसी जीवन में मनुष्य की भयंकरतम दुर्गति हो जाती है। बहुतों के बच्चे भूख से बिलखते हैं, स्त्रियों के पास तन ढापने को वस्त्र नहीं है पर उनकी सारी आय मद्यपान में ही पूरी हो जाती है। सबसे बुरी बात तो यह है कि इस एक बुराई के साथ और अनेक बुराइयां मनुष्य में आ जाती हैं। बुराइयों में परस्पर प्रेम होता है। जिसका एक बुराई से पाला पड़ा समझ लो दुनिया भर की समस्त बुराइयां छाया की तरह उसके साथ हो जाएंगी।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)

मदिरा सर्वथा त्याज्य है

मदिरा हलाहल से भरी प्याली है। सुरापान के लिए अपनी जब से पैसे खर्च कर अपने ही दिल और दिमाग को इस तरह विकृत बनाने से अधिक और क्या पागलपन होगा? मदिरा पीने से उसकी प्यास बुझती नहीं यह तो और भी अधिक बढ़ती है। इस तरह शराबी अपना स्वास्थ्य, मान, सम्मान सब कुछ खोता चला जाता है। आज स्वतंत्र भारत के नैतिक नव-निर्माण की वेला है इसके लिए शराब जैसी घातक वस्तु सर्वथा त्याज्य है।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)।

मानव समाज आत्मवाद की ओर मुड़े

भारतवर्ष सदा से अध्यात्म विद्याओं का केन्द्र रहा है। यहां ऋषि-

महर्षियों द्वारा आत्मा ही प्रधान बिन्दु रही है। फलतः उन्हें सत्, चित्, आनन्द और सत्यं, शिवं, सुन्दरम् तथा ज्ञान, दर्शन, चरित्र की उपलब्धि हुई। पाश्चात्यवासियों ने आत्मा के स्थान पर अन्न और परमात्मा के स्थान पर परमाणु को अपना केन्द्र बिन्दु माना। दीर्घकालीन साधना के बाद उन्हें अणुबम और उद्जनबम के रूप में इसका दर्शन हुआ। अब भी समय है, मानव समाज उनसे हट कर आत्मवाद की ओर मुड़े।

एकत्व भावना का प्रतीक : क्षमा याचना

आज शान्ति व संगठन का युग है। हर एक राष्ट्र, समाज, जाति व वर्ग में शान्ति के आसार नजर आ रहे हैं। दृश्यमान जगत में कोई ही ऐसा समाज होगा जो युग के शान्तिमय शंखनाद को सुनकर सोया पड़ा हो। आज छोटे से छोटा वर्ग भी अपने संगठन, अपनी एकता व अपने संरक्षणार्थ से तथाकथित उच्च वर्गों के बराबर ही नहीं अपितु उनसे भी कहीं होकर चलना चाहता है। आज मजदूरों, किसानों, हरिजनों, व विद्यार्थियों आदि में सर्वत्र संगठन ही संगठन नजर आता है। संगठन के इस युग में क्षमा-याचना का दिन मनाना भी एकत्व भावना का पहला चरणन्यास है।

(सन् १९५३, दिल्ली में क्षमा याचना दिवस पर दिए गए भाषण में)

जीवन की मर्यादा

व्रत जीवन की मर्यादा है। अपनी मर्यादा में ही मनुष्य, मनुष्य है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटा व्रत। अणु से आरम्भ होकर मनुष्य महा की ओर बढ़ता है। आत्म-संयम की वृद्धि समग्र जीवन व्यवहार में है। अहिंसा का जीवन में उत्तरोत्तर विकास हो यह अहिंसा अणुव्रत है। इसी प्रकार सत्य व अपरिग्रह को मानना चाहिए। अहिंसा, सत्य आदि का सम्बन्ध जीवन में पारलौकिक ही है, ऐसी बात नहीं है। इस जीवन में शान्ति

गया है। व्यसन का अर्थ है जो एक बार लग जाने पर छूटना दूभर हो जाता है। देखा गया है कि इस व्यसन के कारण इसी जीवन में मनुष्य की भयंकरतम दुर्गति हो जाती है। बहुतों के बच्चे भूख से बिलखते हैं, स्त्रियों के पास तन ढापने को वस्त्र नहीं है पर उनकी सारी आय मद्यपान में ही पूरी हो जाती है। सबसे बुरी बात तो यह है कि इस एक बुराई के साथ और अनेक बुराइयां मनुष्य में आ जाती हैं। बुराइयों में परस्पर प्रेम होता है। जिसका एक बुराई से पाला पड़ा समझ लो दुनिया भर की समस्त बुराइयां छाया की तरह उसके साथ हो जाएंगी।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)

मदिरा सर्वथा त्याज्य है

मदिरा हलाहल से भरी प्याली है। सुरापान के लिए अपनी जब में पैसे खर्च कर अपने ही दिल और दिमाग को इस तरह विकृत बनाने से अधिक और क्या पागलपन होगा? मदिरा पीने से उसकी प्यास बुझती नहीं यह तो और भी अधिक बढ़ती है। इस तरह शराबी अपना स्वास्थ्य, मान, सम्मान सब कुछ खोता चला जाता है। आज स्वतंत्र भारत के नैतिक नव-निर्माण की वेला है इसके लिए शराब जैसी घातक वस्तु सर्वथा त्याज्य है।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)।

मानव समाज आत्मवाद की ओर मुड़े

भारतवर्ष सदा से अध्यात्म विद्याओं का केन्द्र रहा

यियों द्वारा आत्मा ही प्रधान बिन्दु रही है। फलतः उन्होंने सत्, चित्,
नन्द और सत्यं, शिवं, सुन्दरम् तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उपलब्धि
। पाश्चात्यवासियों ने आत्मा के स्थान पर अणु और परमात्मा के स्थान
परमाणु को अपना केन्द्र बिन्दु माना। दीर्घकालीन साधना के बाद
हैं न्यूटन और आइन्स्टीन के रूप में उस दर्शन हुआ। अब भी
हा है मानव समाज इससे हट कर आत्मवाद की ओर मुड़े।

कत्व भावना का प्रतीक : क्षमा याचना

आज शान्ति व चेतना का युग है। हर एक राष्ट्र, समाज, जाति व
ों में शान्ति के आसार नजर आ रहे हैं। वर्तमान जगत में कोई ही ऐसा
राज होगा जो युग के जागृतिमय शंखनाद को सुनकर सोया पड़ा हो।
ज छोटे से छोटा वर्ग भी अपने संगठन, अपनी एकता व अपने संरक्षणार्थ
तथाकथित उच्च वर्गों के बराबर ही नहीं अपितु उनसे भी ऊँचे होकर
रहना चाहता है। आज मजदूरों, किसानों, हरिजनों, व विद्यार्थियों आदि
सर्वत्र संगठन ही संगठन नजर आता है। संगठन के इस युग में क्षमा-
याचना का दिन मनाना भी एकत्व भावना का पहला चरणन्यास है।

सन् १९५३, दिल्ली में क्षमा याचना दिवस पर दिए गए भाषण से)

जीवन की मर्यादा

व्रत जीवन की मर्यादा है। अपनी मर्यादा से ही मनुष्य, मनुष्य है।
अणुव्रत का अर्थ है—छोटा व्रत। अणु से आरम्भ होकर मनुष्य महा की
ओर बढ़ता है। आत्म-संयम की वृद्धि समग्र जीवन व्यवहार में है।
अहिंसा का जीवन में उत्तरोत्तर विकास हो यह अहिंसा अणुव्रत है। इसी
प्रकार सत्य व अपरिग्रह को मानना चाहिए। अहिंसा, सत्य आदि का
सम्बन्ध जीवन में पारलौकिक ही है, ऐसी बात नहीं है। इस जीवन में शान्ति

अणुव्रत साहित्य

१. शान्ति के पथ पर .. .. आचार्य श्री तुलसी २) रुपया
२. नव निर्माण की पुकार.. .. ,, ,, २) ,,
३. ज्योति के कण .. .. ,, ,, २५ न० पै०
४. प्रगति की पगडंडियां .. .. ,, ,, २९ ,, ,,
५. अणुव्रत जीवन-दर्शन .. .. मुनि श्री नगराज जी २) रुपया
६. अणु से पूर्ण की ओर .. .. ,, ,, ७५ न० पै०
७. अहिंसा के अंचल में.. .. ,, ,, प्रेस में
८. अणुव्रत-विचार .. .. ,, ,, ७५ न० पै
९. अणुव्रत-दृष्टि ... .. ,, ,, १) रुपा
१०. प्रेरणा-दीप .. ... ,, ,, २५ न० पै
११. अणुव्रत-क्रान्ति के बढ़ते चरण.. ,, ,, १५ न०
१२. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग,, ,, ,, ९ ,,
१३. आचार्य श्री तुलसी .. ... मुनि श्री नथमल जी १-५०
१४. अणुव्रत-दर्शन ५० न०
१५. भौतिक प्रगति और नैतिकता.. ,, ,, १२ न०
१६. मानवता का मार्ग अणुव्रत-आन्दोलन : मुनि श्री बुद्धमलजी ६ न
१७. जन-जन के बीच मुनि श्री सुखलाल जी
१८. नैतिकता की ओर निबन्ध-संग्रह १)
१९. विचारकों की दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन: छगनलाल शास्त्री
१९ न
२०. मैत्री-दिवस (अंग्रेजी संस्करण)
२१. अणुव्रत आन्दोलन (नियमावली हिन्दी और अंग्रेजी

अणुव्रत साहित्य

१. शान्ति के पथ पर .. .. आचार्य श्री तुलसी २) रुपया
२. नव निर्माण की पुकार .. .. " " २) "
३. ज्योति के कण .. .. " " २५ न० पै०
४. प्रगति की पगडंडियां .. .. " " २० " "
५. अणुव्रत जीवन-दर्शन .. .. मुनि श्री नगराज जी २) रुपया
६. अणु से पूर्ण की ओर .. .. " " ७५ न० पै०
७. अहिंसा के अंचल में .. .. " " प्रेस में
८. अणुव्रत-विचार .. .. " " ७५ न० पै०
९. अणुव्रत-दृष्टि ... .. " " १) रुपया
१०. प्रेरणा-दीप .. ... " " २५ न० पै०
११. अणुव्रत-क्रान्ति के बढ़ते चरण .. " " १५ न० पै०
१२. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग " " ९ " "
१३. आचार्य श्री तुलसी .. ... मुनि श्री नथमल जी १-५०
१४. अणुव्रत-दर्शन ... .. ५० न० पै०
१५. भौतिक प्रगति और नैतिकता .. " " १२ न० पै०
१६. मानवता का मार्ग अणुव्रत-आन्दोलन : मुनि श्री बुद्धमलजी ६ न० पै०
१७. जन-जन के बीच मुनि श्री सुखलाल जी प्रेस में
१८. नैतिकता की ओर निबन्ध-संग्रह १) रुपया
१९. विचारकों की दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन: छगनलाल शास्त्री
१९ न० पैसा
२०. मैत्री-दिवस (अंग्रेजी संस्करण)
२१. अणुव्रत आन्दोलन (नियमावली हिन्दी और अंग्रेजी)

गया है। व्यसन का अर्थ है जो एक बार लग जाने पर छूटना दूभर हो जाता है। देखा गया है कि इस व्यसन के कारण इसी जीवन में मनुष्य की भयंकरतम दुर्गति हो जाती है। बहुतों के बच्चे भूख से बिलखते हैं, स्त्रियों के पास तन ढापने को वस्त्र नहीं है पर उनकी सारी आय मद्यपान में ही पूरी हो जाती है। सबसे बुरी बात तो यह है कि इस एक बुराई के साथ और अनेक बुराइयां मनुष्य में आ जाती हैं। बुराइयों में परस्पर प्रेम होता है। जिसका एक बुराई से पाला पड़ा समझ लो दुनिया भर की समस्त बुराइयां छाया की तरह उसके साथ हो जाएंगी।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)

मदिरा सर्वथा त्याज्य है

मदिरा हलाहल से भरी प्याली है। सुरापान के लिए अपनी जेब से पैसे खर्च कर अपने ही दिल और दिमाग को इस तरह विकृत बनाने से अधिक और क्या पागलपन होगा? मदिरा पीने से उसकी प्यास बुझती नहीं यह तो और भी अधिक बढ़ती है। इस तरह शराबी अपना स्वास्थ्य, मान, सम्मान सब कुछ खोता चला जाता है। आज स्वतंत्र भारत के नैतिक नव-निर्माण की वेला है इसके लिए शराब जैसी घातक वस्तु सर्वथा त्याज्य है।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)।

मानव समाज आत्मवाद की ओर मुड़े

भारतवर्ष सदा से अध्यात्म विद्याओं का केन्द्र रहा है। यहां ऋषि-

यों द्वारा आत्मा ही प्रयोग विन्दु रही है। फलतः उन्हें सत्, चित्,
न्द और सत्यं, शिवं, सुन्दरम् तथा ज्ञान, दर्शन, चरित्र की उपलब्धि
। पाश्चात्यवासियों ने आत्मा के स्थान पर अणु और परमात्मा के स्थान
परमाणु को अपना केन्द्र विन्दु माना। दीर्घकालीन साधना के बाद
हें अणबम और उदजनबम के रूप में दैत्य दर्शन हुआ। अब भी
मय है मानव समाज उनसे हट कर आत्मवाद की ओर मुड़े।

एकत्व भावना का प्रतीक : क्षमा याचना

आज क्रान्ति व चेतना का युग है। हर एक राष्ट्र, समाज, जाति व वर्ग में क्रान्ति के आसार नजर आ रहे हैं। दृश्यमान जगत में कोई ही ऐसा समाज होगा जो युग के जागृतिमय शंखनाद को सुनकर सोया पड़ा हो। आज छोटे से छोटा वर्ग भी अपने संगठन, अपनी एकता व अपने कर्मण्यभाव से तथाकथित उच्च वर्गों के बराबर ही नहीं अपितु उनसे भी ऊंचे होकर चलना चाहता है। आज मजदूरों, किसानों, हरिजनों, व विद्यार्थियों आदि में सर्वत्र संगठन ही संगठन नजर आता है। संगठन के इस युग में क्षमा-याचना का दिन मनाना भी एकत्व भावना का पहला चरणान्यास है।

(सन् १९५३, दिल्ली में क्षमा याचना दिवस पर दिए गए भाषण से)

जीवन की मर्यादा

व्रत जीवन की मर्यादा है। अपनी मर्यादा से ही मनुष्य, मनुष्य है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटा व्रत। अणु से आरम्भ होकर मनुष्य महा की ओर बढ़ता है। आत्म-संयम की वृद्धि समग्र जीवन व्यवहार में है। अहिंसा का जीवन में उत्तरोत्तर विकास हो यह अहिंसा अणुव्रत है। इसी प्रकार सत्य व अपरिग्रह को मानना चाहिए। अहिंसा, सत्य आदि का सम्बन्ध जीवन में पारलौकिक ही है ऐसी बात नहीं है। इस जीवन में शान्ति

गया है। व्यसन का अर्थ है जो एक बार लग जाने पर छूटना दूभर हो जाता है। देखा गया है कि इस व्यसन के कारण इसी जीवन में मनुष्य की भयंकरतम दुर्गति हो जाती है। बहुतों के बच्चे भूख से बिलखते हैं, स्त्रियों के पास तन ढापने को वस्त्र नहीं है पर उनकी सारी आय मद्यपान में ही पूरी हो जाती है। सबसे बुरी बात तो यह है कि इस एक बुराई के साथ और अनेक बुराइयां मनुष्य में आ जाती हैं। बुराइयों में परस्पर प्रेम होता है। जिसका एक बुराई से पाला पड़ा समझ लो दुनिया भर की समस्त बुराइयां छाया की तरह उसके साथ हो जाएंगी।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)

मदिरा सर्वथा त्याज्य है

मदिरा हलाहल से भरी प्याली है। सुरापान के लिए अपनी जेब से पैसे खर्च कर अपने ही दिल और दिमाग को इस तरह विकृत बनाने से अधिक और क्या पागलपन होगा? मदिरा पीने से उसकी प्यास बुझती नहीं यह तो और भी अधिक बढ़ती है। इस तरह शराबी अपना स्वास्थ्य, मान, सम्मान सब कुछ खोता चला जाता है। आज स्वतंत्र भारत के नैतिक नव-निर्माण की वेला है इसके लिए शराब जैसी घातक वस्तु सर्वथा त्याज्य है।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)।

मानव समाज आत्मवाद की ओर मुड़े

भारतवर्ष सदा से अध्यात्म विद्याओं का केन्द्र रहा है। यहां ऋषि-

महर्षियों द्वारा आत्मा ही प्रयोग विन्दु रही है। फलतः उन्हें सत्, चित्, आनन्द और सत्यं, शिवं, सुन्दरम् तथा ज्ञान, दर्शन, चरित्र की उपलब्धि हुई। पाश्चात्यवासियों ने आत्मा के स्थान पर अणु और परमात्मा के स्थान पर परमाणु को अपना केन्द्र विन्दु माना। दीर्घकालीन साधना के बाद उन्हें अणुबम और उदजनबम के रूप में सत्य दर्शन हुआ। अब भी समय है मानव समाज उनसे हट कर आत्मवाद की ओर मुड़े।

एकत्व भावना का प्रतीक : क्षमा याचना

आज क्रान्ति व चेतना का युग है। हर एक राष्ट्र, समाज, जाति व वर्ग में क्रान्ति के आसार नजर आ रहे हैं। दृश्यमान जगत में कोई ही ऐसा समाज होगा जो युग के जागृति मय शंखनाद को सुनकर सोया पड़ा हो। आज छोटे से छोटा वर्ग भी अपने संगठन, अपनी एकता व अपने कर्मण्यभाव से तथाकथित उच्च वर्गों के बराबर ही नहीं अपितु उनसे भी ऊंचे होकर चलना चाहता है। आज मजदूरों, किसानों, हरिजनों, व विद्यार्थियों आदि में सर्वत्र संगठन ही संगठन नजर आता है। संगठन के इस युग में क्षमा-याचना का दिन मनाना भी एकत्व भावना का पहला चरणान्यास है।

(सन् १९५३, दिल्ली में क्षमा याचना दिवस पर दिए गए भाषण से)

जीवन की मर्यादा

व्रत जीवन की मर्यादा है। अपनी मर्यादा से ही मनुष्य, मनुष्य है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटा व्रत। अणु से आरम्भ होकर मनुष्य महा की ओर बढ़ता है। आत्म-संयम की वृद्धि समग्र जीवन व्यवहार से है। अहिंसा का जीवन में उत्तरोत्तर विकास हो यह अहिंसा अणुव्रत है। इसी प्रकार सत्य व अपरिग्रह को मानना चाहिए। अहिंसा, सत्य आदि का सम्बन्ध जीवन में पारलौकिक ही है ऐसी बात नहीं है। इस जीवन में शान्ति

और [illegible] । [illegible] आन्तरिक
[illegible] जाती है।

व्यक्ति व्यक्ति के जीवन-उत्थान का आन्दोलन

भारत [illegible] और [illegible] रहा है। यही कारण
है कि यहां की संस्कृति के अणु अणु में नैतिकता और आध्यात्मिकता
के प्रति एक अनन्य आकर्षण पाया जाता है। अणुव्रत भी कोई नई चीज
न होकर हमारी इसी आध्यात्म-परम्परा की एक शृंखलाबद्ध कड़ी है।
साधक के लिए जहां महाव्रतों का विधान है वहां साधारण सद्गृहस्थ भी
आत्मकल्याण के लिए अपनी जीवन-व्यवहार की मर्यादा के अनुसार इन
नियमों को ग्रहण कर सके, इसी पुनीत लक्ष्य से अणुव्रतों की अवतारणा
हुई है। इसमें धर्म या सम्प्रदाय की कोई बाधा नहीं है। यह तो व्यक्ति-
व्यक्ति के जीवन-उत्थान का सर्वजन व्यापी आन्दोलन है।

अणुव्रत की उपयोगिता

अणुव्रत नियमों में एक ओर जहां मालिक के लिए "श्रमिकों से अनु-
चित श्रम नहीं लूंगा" का विधान है वहां दूसरी ओर मजदूरों के लिए, "किसी
भी प्रकार से समय की चोरी नहीं करूंगा व दुर्व्यवहार से दूर रहूंगा"
की भी व्यवस्था है। अपने वोट की कीमत लेकर न वेचना कितना छोटा
मगर कितना उपयोगी नियम है। इस प्रकार की छोटी छोटी बुराइयों ने
समूचे समाज व शासन-व्यवस्था को डांवाडोल कर रखा है। इसलिए
आध्यात्मिकता के साथ समाज और शासन की समुचित व्यवस्था में व आदर्श
नागरिकता के निर्माण में अणुव्रतों की महान् उपयोगिता है। कोरे कानून
बना देने मात्र से समाज से अनैतिकता दूर नहीं होगी, और तब तक दूर
नहीं होगी जब तक कि व्यक्ति व्यक्ति में नीति की भावना
जागृत न हो जाएगी।

अणुव्रत आन्दोलन का विधेय पक्ष

जब पानी की अस्वच्छता दूर कर दी जाती है तो पानी को स्वच्छ करने का और कोई प्रयत्न विशेष अवशेष नहीं रह जाता। इसी प्रकार समाज से अनैतिक और अमानवीय वृत्तियों का किसी सात्विक उपक्रम से निरोध हो जाता है तो सामाजिक स्वच्छता का विधेयक पक्ष कोई स्वतन्त्र अर्थ नहीं रखता। अस्वास्थ्य का दूर होना और स्वास्थ्य का लाभ होना दो बात नहीं होती। अणुव्रत-आन्दोलन अवश्य निषेध प्रधान है पर उससे समाज का विधेयक पक्ष नहीं रह जाता, ऐसी बात नहीं है। वह हिंसा, शोषण, वैषम्य का निषेध कर मैत्री, समानता व भ्रातृत्व को जन्म देता है। अणुव्रत-आन्दोलन की तीन श्रेणियां हैं। उसके विभिन्न निषेधात्मक नियम निर्धारित हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि समग्र अणुव्रत-आन्दोलन इतने से शब्द-विन्यास में बंध गया है। ये नियम तो केवल दिशा निर्देश मात्र करते हैं। अणुव्रती की मञ्जिल तो हिंसा व शोषण रहित जीवन व्यवस्था को पा लेना है।

आज का मानव कितना ही नैतिक अधोगमन पा चुका है; फिर भी उसके जीवन में बहुत अपेक्षाओं से सद् का अंश ही अधिक है। इसीलिए तो वह सत्य बोलने का व्रत लेकर तो फिर भी जी सकता है पर असत्य ही बोलने का व्रत लेकर तो एक दिन के लिए भी चल नहीं सकता। मान लें, एक व्यक्ति दिन में दस बार असत्य बोलता है और नब्बे बार सत्य तो यह एक स्वयं सिद्ध मनोविज्ञान है कि बनिस्पत इसके कि तुम दिन में यह सत्य बोलो, वह सत्य बोलो, की असीम तालिका बनाकर उसे दी जाए के बदले तुम निम्न दस प्रकार के असत्य न बोलो का व्रत उसे दिया जाए। यही अधिक प्रशस्त और वास्तविक होता है। समाजस्थ प्राणियों के व काम असंख्य हो सकते हैं, इसलिए उनकी सीमा या

[illegible] अनैतिक [illegible] स्वतः [illegible] हो जाती है।

व्यक्ति व्यक्ति के जीवन-उत्थान का आन्दोलन

भारत की संस्कृति सदा से त्याग और संयम की ओर रहा है। यही कारण है कि यहां की संस्कृति के अणु अणु में नैतिकता और आध्यात्मिकता के प्रति एक अनूठी आकर्षण पाया है। अणुव्रत भी कोई नई चीज न होकर हमारी उसी आध्यात्म-परम्परा की एक शृंखला कड़ी है। साधक के लिए जहां महाव्रतों का विधान है वहां साधारण गृहस्थ भी आत्मकल्याण के लिए अपनी जीवन-व्यवहार की मर्यादा के अनुसार इन नियमों को ग्रहण कर सके, इसी पुनीत लक्ष्य से अणुव्रतों की अवतारणा हुई है। इसमें धर्म या सम्प्रदाय की कोई बाधा नहीं है। यह तो व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन-उत्थान का सर्वजन व्यापी आन्दोलन है।

अणुव्रत की उपयोगिता

अणुव्रत नियमों में एक ओर जहां मालिक के लिए "श्रमिकों से अनुचित श्रम नहीं लूंगा" का विधान है वहां दूसरी ओर मजदूरों के लिए, "किसी भी प्रकार से समय की चोरी नहीं करूंगा व दुर्व्यवहार से दूर रहूंगा" की भी व्यवस्था है। अपने वोट की कीमत लेकर न बेचना कितना छोटा मगर कितना उपयोगी नियम है। इस प्रकार की छोटी छोटी बुराइयों ने समूचे समाज व शासन-व्यवस्था को डांवाडोल कर रखा है। इसलिए आध्यात्मिकता के साथ समाज और शासन की समुचित व्यवस्था में व आदर्श नागरिकता के निर्माण में अणुव्रतों की महान् उपयोगिता है। कोरे कानून बना देने मात्र से समाज से अनैतिकता दूर नहीं होगी, और तब तक दूर नहीं होगी जब तक कि व्यक्ति व्यक्ति में नीति की भावना [illegible] न हो जायगी।

अणुव्रत आन्दोलन का विधेय पक्ष

जब पानी की अस्वच्छता दूर कर दी जाती है तो पानी को स्वच्छ करने का और कोई प्रयत्न विशेष अवशेष नहीं रह जाता। इसी प्रकार समाज से अनैतिक और असामाजिक प्रवृत्तियों का किसी सात्त्विक उपक्रम से निरोध हो जाता है तो सामाजिक स्वच्छता का विधेयक पक्ष कोई स्वतन्त्र अर्थ नहीं रखता। अस्वास्थ्य का दूर होना और स्वास्थ्य का लाभ होना दो बात नहीं होती। अणुव्रत-आन्दोलन अवश्य निषेध प्रधान है पर उससे समाज का विधेयक पक्ष नहीं रह जाता, ऐसी बात नहीं है। वह हिंसा, शोषण, वैषम्य का निषेध कर मैत्री, समानता व बन्धुत्व को जन्म देता है। अणुव्रत-आन्दोलन की तीन श्रेणियां हैं। उसके विभिन्न निषेधात्मक नियम निर्धारित हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि समग्र अणुव्रत-आन्दोलन इतने से शब्द-विन्यास में बंध गया है। ये नियम तो केवल दिशा निर्देश मात्र करते हैं। अणुव्रती की मञ्जिल तो हिंसा व शोषण रहित जीवन व्यवस्था को पा लेना है।

आज का मानव कितना ही नैतिक अधोगमन पा चुका है; फिर भी उसके जीवन में बहुत अपेक्षाओं से सत्य का अंश ही अधिक है। इसीलिए तो वह सत्य बोलने का व्रत लेकर तो फिर भी जी सकता है पर असत्य ही बोलने का व्रत लेकर तो एक दिन के लिए भी चल नहीं सकता। मान लें, एक व्यक्ति दिन में दस बार असत्य बोलता है और नब्बे बार सत्य तो यह एक स्वयं सिद्ध मनोविज्ञान है कि बनिस्पत इसके कि तुम दिन में यह सत्य बोलो, वह सत्य बोलो, की असीम तालिका बनाकर उसे दी जाए, के बदले तुम निम्न दस प्रकार के असत्य न बोलो का व्रत उसे दिया जाए। यही अधिक प्रशस्त और वास्तविक होता है। समाजस्थ प्राणियों के करने के काम असंख्य हो सकते हैं, इसलिए उनकी सीमा या

अणुव्रत साहित्य

१. शान्ति के पथ पर .. .. आचार्य श्री तुलसी २) रुपया
२. नव निर्माण की पुकार.. .. " " २) "
३. ज्योति के कण .. .. " " २५ न० पै०
४. प्रगति की पगडंडियां .. .. " , २९ " "
५. अणुव्रत जीवन-दर्शन .. .. मुनि श्री नगराज जी २) रुपया
६. अणु से पूर्ण की ओर .. .. " " ७५ न० पै०
७. अहिंसा के अञ्चल में.. .. " " प्रेस में
८. अणुव्रत-विचार .. .. " " ७५ न० पै०
९. अणुव्रत-दृष्टि ... .. " " १) रुपया
१०. प्रेरणा-दीप .. ... " " २५ न० पै०
११. अणुव्रत-क्रान्ति के बढ़ते चरण.. " " १५ न० पै०
१२. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग" " ९ " "
१३. आचार्य श्री तुलसी .. ... मुनि श्री नथमल जी १-५०
१४. अणुव्रत-दर्शन ... .. ५० न० पै०
१५. भौतिक प्रगति और नैतिकता.. " " १२ न० पै०
१६. मानवता का मार्ग अणुव्रत-आन्दोलन : मुनि श्री बुद्धमलजी ६ न० पै०
१७. जन-जन के बीच मुनि श्री सुखलाल जी प्रेस में
१८. नैतिकता की ओर निबन्ध-संग्रह १) रुपया
१९. विचारकों की दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन: छगनलाल शास्त्री १९ न० पैसा
२०. मैत्री-दिवस (अंग्रेजी संस्करण)
२१. अणुव्रत आन्दोलन (नियमावली हिन्दी और अंग्रेजी)

अणुव्रत साहित्य

१. शान्ति के पथ पर ..	.. आचार्य श्री तुलसी	२)	रुपया
२. नव निर्माण की पुकार..	.. " "	२)	"
३. ज्योति के कण ..	.. " "	२५	न० पै०
४. प्रगति की पगडंडिया ..	.. " "	२९	" "
५. अणुव्रत जीवन-दर्शन ..	.. मुनि श्री नगराज जी	२)	रुपया
६. अणु से पूर्ण की ओर ..	.. " "	७५	न० पै०
७. अहिंसा के अञ्चल में..	.. " "		प्रेस में
८. अणुव्रत-विचार ..	.. " "	७५	न० पै०
९. अणुव्रत-दृष्टि ...	.. " "	१)	रुपया
१०. प्रेरणा-दीप ..	... " "	२५	न० पै०
११. अणुव्रत-क्रान्ति के बढ़ते चरण..	" "	१५	न० पै०
१२. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग	" "	९	" "
१३. आचार्य श्री तुलसी ..	... मुनि श्री नथमल जी	१-५०	
१४. अणुव्रत-दर्शन ...	..	५०	न० पै०
१५. भौतिक प्रगति और नैतिकता..	" "	१२	न० पै०
१६. मानवता का मार्ग अणुव्रत-आन्दोलन :	मुनि श्री बुद्धमलजी	६	न० पै०
१७. जन-जन के बीच	मुनि श्री सुखलाल जी		प्रेस में
१८. नैतिकता की ओर	निबन्ध-संग्रह	१)	रुपया
१९. विचारकों की दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन:	छगनलाल शास्त्री	१९	न० पैसा
२०. मैत्री-दिवस	(अंग्रेजी संस्करण)		
२१. अणुव्रत आन्दोलन	(नियमावली हिन्दी और अंग्रेजी)		

अणुव्रत आन्दोलन किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रचारार्थ
चलाया गया है। इसमें तो जाति, धर्म या देश आदि की स
मर्यादाओं से दूर मानव मात्र के नैतिक अभ्युदय की पुनीत कल्पना
आन्दोलन का समग्र विधि-विधान और अब तक का उसका व्यावहा
रूप इसी तथ्य का पोषक है। आन्दोलन-प्रवर्तक आचार्यश्री स
इस विषय में अत्यन्त स्पष्ट एवं जागरूक हैं। देहली की एक सार्व
सभा में एक जैनेतर व्यक्ति ने उनसे पूछा कि क्या अणुव्रती बनने
व्यक्ति के लिए आपको अपना धर्मगुरु मान लेना आवश्यक नहीं
जाता? आचार्य श्री तुलसी ने कहा—इसकी जरा भी अनिवार्यता
है। प्रश्नकर्त्ता ने कहा—क्या यह भी आवश्यक नहीं कि वह अ
प्रणाम करे? आचार्य श्री तुलसी ने कहा—आन्दोलन के विधि
निर्धारित नियमों के पालन की अनिवार्यता है, न कि मुझे प्रणाम
की। अब तक जो सहस्त्रों लोग अणुव्रती बनें हैं उनमें हिन्दू, जैन,
इस्लाम आदि विभिन्न धर्मों व किसान, मजदूर, हरिजन, महाजन
विभिन्न वर्गों के लोग हैं। अणुव्रती होने से न उनकी जाति
है और न उनका धर्म।

अणुव्रत साहित्य

१. शान्ति के पथ पर .. .. आचार्य श्री तुलसी २) रुपया
२. नव निर्माण की पुकार.. .. " " २) "
३. ज्योति के कण .. .. " " २५ न० पै०
४. प्रगति की पगडंडियां .. .. " " २५ " "
५. अणुव्रत जीवन-दर्शन .. .. मुनि श्री नगराज जी २) रुपया
६. अणु से पूर्ण की ओर .. .. " " ३५ न० पै०
७. अहिंसा के अंचल में.. .. " " प्रेस में
८. अणुव्रत-विचार .. .. " " ४५ न० पै०
९. अणुव्रत-दृष्टि ... .. " " १) रुपया
१०. प्रेरणा-दीप .. ... " " २५ न० पै०
११. अणुव्रत-क्रान्ति के बढ़ते चरण.. " " १५ न० पै०
१२. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग" " " " "
१३. आचार्य श्री तुलसी .. ... मुनि श्री नथमल जी १-५०
१४. अणुव्रत-दर्शन ... .. ५० न० पै०
१५. भौतिक प्रगति और नैतिकता.. " " १२ न० पै०
१६. मानवता का मार्ग अणुव्रत-आन्दोलन : मुनि श्री बुद्धमलजी ६ न० पै०
१७. जन-जन के बीच मुनि श्री सुखलाल जी प्रेस में
१८. नैतिकता की ओर निबन्ध-संग्रह १) रुपया
१९. विचारकों की दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन: छगनलाल शास्त्री १९ न० पैसा

२०. मैत्री-दिवस (अंग्रेजी संस्करण)
२१. अणुव्रत आन्दोलन (नियमावली हिन्दी और अंग्रेजी)

अणुव्रत साहित्य

१. शान्ति के पथ पर .. .. आचार्य श्री तुलसी २) रुपया
२. नव निर्माण की पुकार .. .. " " २) "
३. ज्योति के कण .. .. " " २५ न० पै०
४. प्रगति की पगडंडियां .. .. " " २५ " "
५. अणुव्रत जीवन-दर्शन .. .. मुनि श्री नगराज जी २) रुपया
६. अणु से पूर्ण की ओर .. .. " " ३५ न० पै०
७. अहिंसा के सम्बन्ध में .. .. " " प्रेस में
८. अणुव्रत-विचार .. .. " " ३१ न० पै०
९. अणुव्रत-दृष्टि ... .. " " १) रुपया
१०. प्रेरणा-दीप .. ... " " २५ न० पै०
११. अणुव्रत-क्रान्ति के बढ़ते चरण .. " " १५ न० पै०
१२. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग .. " " " " "
१३. आचार्य श्री तुलसी .. ... मुनि श्री नथमल जी १.५०
१४. अणुव्रत-दर्शन ... .. ५० न० पै०
१५. भौतिक प्रगति और नैतिकता .. " " १२ न० पै०
१६. मानवता का मार्ग अणुव्रत-आन्दोलन : मुनि श्री बुद्धमलजी ६ न० पै०
१७. जन-जन के बीच मुनि श्री सुखलाल जी प्रेस में
१८. नैतिकता की ओर निबन्ध-संग्रह १) रुपया
१९. विचारकों की दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन: छगनलाल शास्त्री

१९ न० पैसा

२०. मैत्री-दिवस (अंग्रेजी संस्करण)
२१. अणुव्रत आन्दोलन (नियमावली हिन्दी और अंग्रेजी)